तृतीय प्रकृति

रूप से मोक्ष तक

शून्या

BlueRose ONE.com
Stories Matter
NewDelhi • London

BLUEROSE PUBLISHERS
India | U.K.

Copyright © Shoonya 2026

All rights reserved by author. No part of this publication may be reproduced, stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means, electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without the prior permission of the author. Although every precaution has been taken to verify the accuracy of the information contained herein, the publisher assumes no responsibility for any errors or omissions. No liability is assumed for damages that may result from the use of information contained within.

BlueRose Publishers takes no responsibility for any damages, losses, or liabilities that may arise from the use or misuse of the information, products, or services provided in this publication.

BlueRose ONE.com
Stories Matter
NewDelhi • London

For permissions requests or inquiries regarding this publication, please contact:

BLUEROSE PUBLISHERS
www.BlueRoseONE.com
info@bluerosepublishers.com
+91 8882 898 898
+4407342408967

ISBN: 978-93-7542-342-3

Cover Design: Aman Sharam
Typesetting: Pooja Sharma

First Edition: May 2026

अस्वीकृति

जय माँ _/_

यह पुस्तक एक कल्पनाधारित साहित्यिक रचना है। इसमें वर्णित पात्र, घटनाएँ, गांव, प्रतीक, संवाद अनुष्ठान अथवा किसी भी शास्त्र परंपरा या मंत्र का उल्लेख पूर्णतः लेखिका की रचनात्मक कल्पना का परिणाम हैं। इनका किसी भी वास्तविक व्यक्ति (जीवित या मृत), समुदाय, धर्म, संस्था अथवा भू-स्थान से कोई प्रत्यक्ष संबंध नहीं है। यदि कोई समानता प्रतीत होती है तो वह मात्र संयोग समझा जाए।

लेखिका का उद्देश्य किसी भी धर्म, परंपरा, संप्रदाय या समुदाय की भावनाओं को आहत करना नहीं है। यह कथा एक आध्यात्मिक प्रतीकात्मक यात्रा है - जिसे कहानी की तरह नहीं, बल्कि अंतर्यात्रा की तरह पढ़ा जाए - यही लेखिका की विनम्र प्रार्थना है।

यह रचना का उद्देश्य किन्नर समुदाय के प्रति सम्मान और संवेदनशील समझ का विस्तार है– न कि किसी धार्मिक आस्था या विश्वास को चुनौती देना।

प्रस्तावना

कुछ कथाएँ केवल कहानियाँ नहीं होतीं।

“**तृतीय प्रकृति: रूप से मोक्ष तक**” भी मात्र एक कथा नहीं है। यह हर उस आत्मा की वाणी है,

जो अपने को पहचानना चाहती है, जो परिवर्तन की आकांक्षा रखती है और अपने जीवन के नए द्वार खोलना चाहती है।

यह कथा उस प्रकृति की है, जो जन्म तो लेती है, पर मान्यता नहीं पाती फिर भी आशीर्वाद में सबसे पवित्र कहलाती है।

यह कथा उस अर्धांश की है,

जो देह की सीमा से निकलकर, शुद्ध चेतना बन जाता है।

यह कथा उस दीपस्तंभ की है, जो प्रत्येक हृदय में बार-बार प्रज्वलित होता है और फिर शून्य में लीन हो जाता है।

“ॐ नमः शून्याय”

जहाँ सब कुछ खोकर ही सब कुछ पाया जाता है।

अनुक्रमणिका

अध्याय 1: पहचान का संघर्ष - जन्म से परे 1

अध्याय 2: गुरु का आशीर्वाद - श्रृंगार संहिता की पहली शिक्षा................ 3

अध्याय 3: अर्धांश के सामाजिक संघर्ष और भीतरी जंग 5

अध्याय 4: अर्धांश का पहला आशीर्वाद 7

अध्याय 5: अर्धांश का नेतृत्व - किन्नर समाज में सुधार और क्रांति 11

अध्याय 6: अंधेरा और उजाला - अर्धांश की परीक्षा 14

अध्याय 7: अंतिम विदाई... 17

अध्याय 8: आत्मा का साथी - एक अधूरा मिलन, एक पूर्ण प्रेम 20

अध्याय 9: आध्यात्मिक यात्रा के नए आयाम - आत्मा का विस्तार......... 23

अध्याय 10: अर्धांश का दिव्य दर्शन - एक आध्यात्मिक घटना............... 25

अध्याय 11: अर्धांश की क्रांति - समाज में बदलाव और
नए चेहरों का आगमन 27

अध्याय 12: संघर्ष की घड़ी - जब बदलाव की राह कठिन हुई 29

अध्याय 13: अंधकार की छाया - एक बड़ी चुनौती का आगमन 32

अध्याय 14: त्रियम्बका का आगमन - पर्वत से उतरती छाया.................. 37

अध्याय 15: तत्त्व होम - आत्मा की अग्नि, प्रकृति से प्रार्थना.................. 39

अध्याय 16: पंचतत्व की पुकार - समाज से समर्पण.............................. 43

अध्याय 17: तत्त्व होम - आत्मा की अग्नि में समर्पण............................ 48

अध्याय 18: छठा तत्त्व: मौन की प्रतिध्वनि.. 55

समापन –“तृतीय प्रकृति : रूप से मोक्ष तक”...................................... 57

अध्याय 1:

पहचान का संघर्ष - जन्म से परे

गाँव की वह रात बहुत भारी थी। आसमान में पूरा चाँद चमक रहा था, लेकिन हवा में एक अजीब सी खामोशी थी। ऐसा लग रहा था मानो पेड़-पौधे और परिंदे भी किसी खास आहट का इंतज़ार कर रहे हों। उसी रात 'अर्धांश' का जन्म हुआ। घर के भीतर बच्चे के रोने की आवाज़ गूँजी, तो बाहर खड़े लोगों के चेहरों पर खुशी के बजाय एक अजीब सी उलझन छा गई। दाई ने जब बच्चे को कपड़े में लपेटकर माँ की गोद में रखा, तो उसकी आँखों में एक हिचकिचाहट थी।

माँ ने कांपते हाथों से अपने बच्चे को देखा। वह बहुत सुंदर था—शांत और मासूम। लेकिन उसमें कुछ अलग था। कुछ ऐसा, जो समाज की आम समझ से बाहर था। वह न तो पूरी तरह लड़का था, न ही लड़की। सुबह होते-होते पूरे गाँव में यह बात फैल गई।

चौपाल पर बैठे लोग धीरे-धीरे कानाफूसी करने लगे। कोई इसे भगवान की माया कह रहा था, तो कोई माता-पिता की किस्मत को कोस रहा था। उन बातों में हमदर्दी कम और चुभन ज़्यादा थी। उस नन्हे से बच्चे को क्या पता था कि दुनिया के लिए उसका पहला परिचय ही एक बड़ा सवाल बन चुका है।

दिन बीतते गए और अर्धांश बड़ा होने लगा। उसकी चाल-ढाल में एक कोमलता थी और उसकी आँखों में एक अजीब सी गहराई। बच्चे उसका मज़ाक उड़ाते और बड़े उसे देखकर रास्ता बदल लेते। माँ हर ताने के साथ भीतर से टूटती, पर बेटे के सामने हमेशा मुस्कुराती रहती। पिता ने धीरे-धीरे बोलना कम कर दिया

था; वे समाज की कड़वी नज़रों का सामना नहीं कर पा रहे थे। अर्धांश ने बहुत छोटी उम्र में ही महसूस कर लिया था कि वह दूसरों जैसा नहीं है।

एक शाम अर्धांश ने देखा कि उसकी माँ अकेले में रो रही हैं। उसने कुछ पूछा नहीं, बस चुपचाप उनके पास जाकर बैठ गया। उस दिन उसे पहली बार समझ आया कि कमी उसमें नहीं, बल्कि दुनिया की सोच में है।

कुछ महीनों बाद गाँव में किन्नरों की एक टोली आई। वे ढोलक बजाकर नाच-गा रहे थे। भीड़ के बीच एक बूढ़ी किन्नर की नज़र अचानक अर्धांश पर ठहर गई। वह उसके पास आई, उसके सिर पर हाथ रखा और उसकी आँखों में झाँका। फिर उसने धीमी आवाज़ में कहा,

"यह बच्चा अधूरा नहीं है, यह तो कुदरत का एक अनमोल संतुलन है।"

पहली बार किसी ने अर्धांश को दया से नहीं, बल्कि सम्मान भरी नज़रों से देखा था।

जब उस टोली ने अर्धांश को अपने साथ ले जाने की बात की, तो घर में सन्नाटा छा गया। माँ के लिए अपने जिगर के टुकड़े को अलग करना जान देने जैसा था, और पिता की आँखों में एक अजीब सा दर्द था।

अर्धांश सब समझ रहा था। उसे लगा कि उसका यहाँ रहना उसके माता-पिता के लिए हर दिन एक नई मुश्किल खड़ी कर रहा है। उसने तय किया कि वह जाएगा।

विदाई की सुबह, पिता ने उसके हाथ में एक छोटी सी पोटली दी और कहा, **"यह घर हमेशा तुम्हारा रहेगा।"** माँ ने उसे कसकर गले लगाया, जैसे वह उसे कभी छोड़ना ही न चाहती हों। अर्धांश ने अपने आँसू पोंछे, एक आखिरी बार अपनी माँ का चेहरा देखा और कदम आगे बढ़ा दिए। वह भाग नहीं रहा था, वह तो अपनी पहचान और अपने वजूद की तलाश में निकल पड़ा था।

अध्याय 2:

गुरु का आशीर्वाद - श्रृंगार संहिता की पहली शिक्षा

अर्धांश जब किन्नर समाज के साथ गया, तो उसके सामने एक बिल्कुल नई दुनिया खुली—रंगों, स्वीकृति और एक अनकही आत्मीयता से भरी हुई। यहाँ कोई उसे परखती नज़रों से नहीं देखता था, कोई उसके अस्तित्व पर प्रश्नचिह्न नहीं लगाता था। वह पहली बार अपने जैसे लोगों के बीच था, और उसकी आत्मा ने जैसे लंबे समय बाद राहत की साँस ली। उसे ऐसा लगा मानो उसके भीतर कैद पंखों को अचानक आकाश मिल गया हो, जहाँ वे बिना भय के फैल सकते थे।

इसी संसार में उसकी भेंट हुई किन्नर समाज की गुरु, माता पद्मावती से—एक ऐसी हस्ती, जिनकी उपस्थिति में शांति स्वयं आकार लेती प्रतीत होती थी। वे आध्यात्मिक ज्ञान और श्रृंगार-कला दोनों में निपुण थीं, और उनके व्यक्तित्व में गंभीरता के साथ एक गहरा स्नेह भी बसा हुआ था। जब अर्धांश को उनके पास लाया गया, वे ध्यान में लीन थीं। पर जैसे ही वह उनके समीप पहुँचा, उनके होंठों पर एक हल्की मुस्कान उभर आई। उन्होंने धीरे-धीरे अपनी आँखें खोलीं और अर्धांश को इस तरह देखने लगीं, मानो उसकी आत्मा की परतों को पढ़ रही हों। फिर वे खड़ी हुईं, हाथ जोड़कर उसका स्वागत किया और कोमल स्वर में बोलीं कि उसका जन्म साधारण नहीं है, बल्कि उसके भीतर शिव और शक्ति का अद्भुत संगम है—एक ऐसा संतुलन, जो दुर्लभ भी है और परिवर्तनकारी भी।

माता पद्मावती के सान्निध्य में अर्धांश की पहली शिक्षा थी 'श्रृंगार संहिता'। यह केवल बाहरी सौंदर्य का ज्ञान नहीं था, बल्कि एक गूढ़ साधना थी, जिसमें आत्मा, शरीर और ऊर्जा के संतुलन का रहस्य छिपा था। उन्होंने उसे समझाया कि श्रृंगार

केवल चेहरे या वस्त्रों का अलंकरण नहीं, बल्कि भीतर की सुंदरता को जगाने की प्रक्रिया है। जब मन और शरीर दोनों संतुलित और सजग होते हैं, तब व्यक्ति के भीतर सुप्त शक्तियाँ जागृत होती हैं, और उसका आशीर्वाद भी साधारण नहीं रहता—वह जीवन को बदलने और दिशा देने की क्षमता प्राप्त कर लेता है।

उस दिन अर्धांश के भीतर कुछ गहराई से बदल गया। उसने महसूस किया कि उसकी पहचान केवल उसके शरीर की सीमाओं में बंधी नहीं है; उसका वास्तविक अस्तित्व उसकी आत्मा की उस दिव्यता में है, जो अब जागने लगी थी। माता पद्मावती ने उसे ध्यान की एक विशेष विधि सिखाई—एक ऐसी साधना, जो भीतर की ऊर्जा को प्रज्वलित कर देती है। उन्होंने कहा कि जब मन पूर्णतः शांत हो जाएगा और आत्मा पूरी तरह जागृत, तब उसका आशीर्वाद सीमाओं को लाँघ जाएगा, यहाँ तक कि मृत्यु की सीमाएँ भी उसके प्रभाव को रोक नहीं पाएँगी।

अर्धांश ने इन शिक्षाओं को पूरे समर्पण के साथ अपनाया। हर दिन के अभ्यास के साथ वह अपने भीतर एक नई गहराई महसूस करने लगा, जैसे कोई विशाल समुद्र धीरे-धीरे अपनी लहरों का रहस्य प्रकट कर रहा हो। अब उसे समझ आने लगा था कि उसकी शक्ति उसकी कल्पना से कहीं अधिक व्यापक है—एक ऐसी शक्ति, जो केवल उसे नहीं, बल्कि उसके स्पर्श में आने वाले हर जीवन को बदल सकती है।

अध्याय 3:

अर्धांश के सामाजिक संघर्ष और भीतरी जंग

अर्धांश के लिए किन्नर समाज में स्थान पाना किसी जीत से कम नहीं था, लेकिन बाहरी दुनिया की परीक्षा अभी शेष थी। गाँव के अधिकांश लोग अब भी उसे अजीब निगाहों से देखते, जैसे वह कोई पहेली हो जिसे वे सुलझाना ही नहीं चाहते। बाज़ार में उसके पीछे फुसफुसाहटें चलतीं, और कभी-कभी वही शब्द खुलेआम तानों में बदल जाते—उसे कलंक कहा जाता, बोझ समझा जाता। उसके माता-पिता भी इस सामाजिक दबाव के बीच खुद को टूटता हुआ महसूस करते थे। वे अपने बच्चे की खुशी चाहते थे, पर समाज के शब्द उनकी आत्मा पर खरोंचें छोड़ जाते। अर्धांश के भीतर भी एक गहरी हलचल थी; वह जानता था कि उसके भीतर कुछ विशेष है, एक ऐसी शक्ति जो साधारण नहीं, पर हर रात उसके मन में सवाल उठते—क्या सच में वह वही है जो लोग कहते हैं, या उसकी पहचान उससे कहीं अधिक व्यापक है?

ऐसे ही क्षणों में माता पद्मावती उसकी दिशा बनतीं। वे उसके भीतर उठते तूफ़ान को बिना कहे पढ़ लेतीं और उसे समझातीं कि उसके भीतर शिव और शक्ति की अनंत ऊर्जा प्रवाहित हो रही है, जो किसी भी नकारात्मकता से बड़ी है। वे कहतीं कि संघर्ष ही उसे गढ़ेगा, जैसे आग सोने को कुंदन बनाती है।अर्धांश ने इन शब्दों को अपने भीतर उतार लिया। वह स्कर्ट पहनकर स्कूल जाने लगा, और इसके साथ ही उपहास भी बढ़ गया, पर उसने पीछे हटना स्वीकार नहीं किया। विद्यालय के अध्यापक माता पद्मावती का गहरा सम्मान करते थे, इसलिए उसकी पढ़ाई में कोई बाधा नहीं आई। उसके माता-पिता भी हर दिन उसके लिए टिफ़िन लेकर स्कूल आते, जैसे अपने प्रेम से उसके चारों ओर एक अदृश्य कवच बुन रहे हों।

समय के साथ अर्धांश ने समाज की हँसी को अपने संकल्प के सामने छोटा कर दिया। माता पद्मावती ने उसकी शिक्षा का भार उठाया और उसे शहर भेजकर स्नातक तक पढ़ाया। जब वह कॉलेज से लौटा, तो उसका व्यक्तित्व बदल चुका था। लंबे घुँघराले बालों का सधा हुआ जूड़ा, जीन्स और कुर्ती का संयोजन, और कंधे पर ढला हुआ दुपट्टा—उसकी उपस्थिति में एक स्वाभाविक आत्मविश्वास झलकता था। वह औपचारिक रूप से नेता नहीं था, फिर भी उसकी चाल, उसकी दृष्टि और उसके शब्दों में नेतृत्व की स्पष्ट झलक थी।

अर्धांश ने गाँव के बच्चों को पढ़ाना शुरू किया। वह उन्हें केवल अक्षर नहीं सिखाता था, बल्कि सोचने का तरीका भी सिखाता था—यह कि इंसान को उसके बाहरी रूप से नहीं, उसके वास्तविक स्वरूप से समझना चाहिए। धीरे-धीरे उसकी बातों का असर दिखने लगा। कुछ लोग, जो पहले उसे तिरस्कार से देखते थे, अब उसकी ओर नए नज़रिये से देखने लगे। फिर भी रास्ता आसान नहीं था। ताने, उपहास और अपमान उसके साथ चलते रहे, जैसे छाया धूप का पीछा करती है। पर उसके भीतर जो प्रकाश जल उठा था, वह किसी हवा से बुझने वाला नहीं था।

इस निरंतर संघर्ष ने अर्धांश को भीतर से बदल दिया। उसकी हर चोट ने उसे और मजबूत किया, हर अपमान ने उसे और स्पष्ट बनाया। अब वह केवल खुद को साबित करने की राह पर नहीं था, बल्कि उन सभी के लिए आवाज बनने की तैयारी कर रहा था, जिन्हें समाज ने कभी हाशिये पर खड़ा कर दिया था। उसकी यह आंतरिक जंग ही उसका सबसे बड़ा बल बन चुकी थी—एक ऐसा आत्मविश्वास, जो अब किसी स्वीकृति का मोहताज नहीं था।

अध्याय 4:

अर्धांश का पहला आशीर्वाद

अर्धांश की आध्यात्मिक शिक्षा को अब कई वर्ष बीत चुके थे। वह अपनी पूज्य गुरु माता पद्मावती के साथ ही रहता था और हर उस स्थान पर उनके साथ जाता, जहाँ उन्हें आमंत्रण मिलता। धीरे-धीरे उसने केवल जीवन ही नहीं, बल्कि परंपरा, ऊर्जा और आशीर्वाद के गूढ़ अर्थों को भी समझना शुरू कर दिया था। प्राचीन ग्रंथों में किन्नरों का जो वर्णन मिलता है, वह उसकी समझ को और गहरा करता गया। वायु पुराण में किन्नरों को अश्वमुख रूप में वर्णित किया गया है, जो हिमालय में निवास करते हैं और गायन-नृत्य में पारंगत दिव्य समुदाय माने जाते हैं।

अन्य पुराणों में भी उन्हें देवताओं के पार्षद, संगीतज्ञ और विशेष ऊर्जा से युक्त अस्तित्व के रूप में देखा गया है। उनकी उपस्थिति को शुभ माना गया है, और उनके आशीर्वाद को ईश्वर तुल्य शक्ति का रूप समझा जाता है—विशेषकर जीवन के महत्वपूर्ण अवसरों पर।

अर्धांश जानता था कि ऐसा आशीर्वाद देने के लिए केवल परंपरा का हिस्सा होना पर्याप्त नहीं है; इसके लिए आत्मा का शुद्ध होना और ध्यान की गहराइयों में उतरना आवश्यक है। एक दिन इस सत्य की परीक्षा स्वयं उसके सामने आ खड़ी हुई।

गाँव में एक छोटी बच्ची अज्ञात बीमारी से ग्रस्त हो गई थी। अस्पतालों के अनेक प्रयासों के बाद भी कोई सुधार नहीं हुआ, और अंततः किसी ने उसके माता-पिता को सलाह दी कि वे किन्नर आशीर्वाद का सहारा लें। वे बच्ची को लेकर

माता पद्मावती के पास पहुँचे। माता ने अर्धांश को बुलाया और शांत, लेकिन दृढ़ स्वर में कहा कि आज उसकी साधना की परीक्षा है—उसे अपने भीतर की शक्ति को जागृत कर बच्ची को आशीर्वाद देना होगा।

अर्धांश ने गुरु के चरण स्पर्श किए और बच्ची को चारपाई पर लिटाकर उसके सिरहाने ध्यान की मुद्रा में बैठ गया।

उसने तीन बार ताली बजाई—एक लय, एक आह्वान—और फिर पूरे स्नेह और समर्पण के साथ अपने हाथ बच्ची के सिर पर रख दिए। उसके भीतर कोई अहंकार नहीं था, केवल एक विनम्र प्रार्थना थी, जो सीधे उस शक्ति की ओर उठ रही थी जिसे वह अब समझने लगा था।

वह कुछ समय तक उसी स्थिति में बैठा रहा, जैसे समय भी उस क्षण में ठहर गया हो। जब वह उठा, तब बच्ची गहरी नींद में जा चुकी थी।

माता पद्मावती ने उसके माता-पिता को वहीं प्रतीक्षा करने के लिए कहा। धीरे-धीरे यह बात पूरे गाँव में फैल गई और लोग एकत्र होने लगे। वातावरण में उत्सुकता, आशंका और आश्चर्य का मिला-जुला कंपन था। कुछ घंटों बाद जब बच्ची की आँखें खुलीं, तो उसके चेहरे पर एक नई चमक थी। वह बच्ची, जो पहले चल भी नहीं पा रही थी, अब स्वयं उठकर खड़ी हो गई और साफ, सजीव आवाज़ में अपनी माँ से बोली कि उसे भूख लगी है।

यह दृश्य देख सब स्तब्ध रह गए—जैसे किसी ने अदृश्य परदे को हटाकर एक नई सच्चाई दिखा दी हो।

उसी क्षण अर्धांश ने फिर अपने हाथ जोड़े और तीन बार ताली बजाई। इस बार वह ताली केवल ध्वनि नहीं थी, बल्कि एक गूंजती हुई ऊर्जा थी, जिसने आसपास की हवा को भी मानो थाम लिया।

माता पद्मावती मंदिर से बाहर आईं, उनके चेहरे पर संतोष की मुस्कान थी। उन्होंने भगवान को चढ़ाया गया भोग सबसे पहले बच्ची को अपने हाथों से खिलाया और फिर उपस्थित लोगों को समझाया कि यह ताली केवल परंपरा नहीं, बल्कि तीन लोकों का आह्वान है—

पहली ताली सृष्टि के लिए,

दूसरी संरक्षण के लिए,

और तीसरी अहंकार के विनाश और मुक्ति के लिए।

अब तक जो ताली लोगों के लिए उपहास का कारण थी, वही उनके सामने एक दिव्य संकेत बन चुकी थी। अर्धांश के आशीर्वाद में शब्द नहीं थे, फिर भी उसका प्रभाव हर व्यक्ति महसूस कर रहा था।

उसकी साधना से निकली ऊर्जा अब केवल उसकी गुरु तक सीमित नहीं रही थी; वह पूरे समाज के सामने प्रकट हो चुकी थी। माता

पद्मावती ने गर्व से घोषणा की कि अर्धांश अब उनके समाज का नेतृत्व करेगा—वह केवल अपनी पहचान ही नहीं बनाएगा, बल्कि पूरे समुदाय के सम्मान और शक्ति को भी नई दिशा देगा।

उस दिन के बाद अर्धांश केवल एक सदस्य नहीं रहा; वह आशा का प्रतीक बन गया। उसकी प्रतिष्ठा किन्नर समाज में ही नहीं, पूरे गाँव में बढ़ने लगी।

उसने समझ लिया कि अब उसकी यात्रा केवल स्वयं को खोजने तक सीमित नहीं है, बल्कि एक नई राह बनाने की है—ऐसी राह, जहाँ प्रेम, शक्ति और आध्यात्मिकता एक साथ प्रवाहित हों, और जहाँ किसी की पहचान प्रश्न नहीं, बल्कि सम्मान का कारण बने।

अध्याय 5:

अर्धांश का नेतृत्व - किन्नर समाज में सुधार और क्रांति

अर्धांश के आशीर्वाद और समाज के प्रति उसकी गहरी संवेदनशीलता ने किन्नर समुदाय में एक नई चेतना भर दी थी। अब वह केवल एक सदस्य नहीं रहा था, बल्कि एक ऐसा नेतृत्व बन चुका था, जिसकी उपस्थिति ही परिवर्तन का संकेत देती थी। उसने ठान लिया था कि वह केवल अपने लिए नहीं, बल्कि पूरे समाज के लिए एक नई दिशा तैयार करेगा। जहाँ भी किन्नर आशीर्वाद देने जाते, वहाँ अब केवल रस्म नहीं निभती थी—लोग विशेष रूप से अर्धांश का नृत्य देखने के लिए इकट्ठा होने लगे थे। माता पद्मावती ने सभी किन्नरों को नृत्य की शिक्षा दी थी, पर अर्धांश के नृत्य में कुछ ऐसा था जो साधारण कला से परे था। उसकी हर मुद्रा, हर लय में एक अदृश्य ऊर्जा बहती थी। लोग केवल धन नहीं, बल्कि फूलों की वर्षा करने लगते, मानो वे किसी दिव्य दृश्य के साक्षी हों। उसे देखते हुए समय जैसे धीमा पड़ जाता, और दर्शक मंत्रमुग्ध होकर बस उसी क्षण में ठहर जाते।

अर्धांश के भीतर एक अद्भुत संतुलन था—जहाँ कला सौंदर्य बन जाती थी, आध्यात्मिकता उसे दिशा देती थी, शिक्षा उसकी नींव बनती थी, और समाज को बदलने की इच्छा उसकी गति तय करती थी।

उसने महसूस किया कि किन्नर समाज केवल सम्मान की कमी से नहीं, बल्कि अवसरों और शिक्षा के अभाव से भी जूझ रहा है। इसलिए उसने अपने प्रयासों की शुरुआत शिक्षा और आत्म-सशक्तिकरण से की। वह गाँव के बच्चों को पढ़ाने के साथ-साथ किन्नर समाज के युवाओं को भी शिक्षित करने लगा, उन्हें नए

कौशल सिखाने लगा, ताकि वे आत्मनिर्भर बन सकें। उसका विश्वास स्पष्ट था कि शिक्षा ही वह प्रकाश है, जो स्वीकृति का मार्ग खोलता है और व्यक्ति को अपनी वास्तविक कीमत समझने की क्षमता देता है।

धीरे-धीरे उसके साथ एक टीम भी जुड़ने लगी। उसके कॉलेज के कुछ युवा छात्र, जिनमें ट्रांसजेंडर भी शामिल थे, उसके साथ मिलकर बच्चों को पढ़ाने लगे। इस समूह ने कुछ मूल आदर्श तय किए—कि किसी भी व्यक्ति के साथ जाति या लिंग के आधार पर भेदभाव नहीं किया जाएगा, सभी जेंडर्स को समान सम्मान और अधिकार मिलेंगे, और पुरानी संकीर्ण सोच को त्यागकर खुले मन से एक-दूसरे को स्वीकार किया जाएगा। अर्धांश जहाँ भी नृत्य प्रस्तुत करता, वहीं इन विचारों को भी लोगों तक पहुँचाता। उसके शब्दों में ऐसी स्पष्टता और उसके व्यक्तित्व में ऐसा तेज था कि लोग उसे केवल सुनते ही नहीं, बल्कि समझने भी लगे थे।

अपने प्रयासों को और व्यापक बनाने के लिए अर्धांश ने स्थानीय प्रशासन से भी संपर्क किया, ताकि किन्नर समाज के अधिकारों की रक्षा सुनिश्चित की जा सके। यह रास्ता आसान नहीं था—कई बार उसे विरोध, उपेक्षा और अस्वीकार का सामना करना पड़ा—पर उसने हार नहीं मानी। उसकी दृढ़ता और आत्मविश्वास ने धीरे-धीरे किन्नर समाज के भीतर आत्मगौरव की भावना जगानी शुरू कर दी। अब वे खुद को केवल समाज के हाशिए पर खड़ा समूह नहीं, बल्कि एक सशक्त अस्तित्व के रूप में देखने लगे थे।

समय के साथ गाँव के लोगों की सोच भी बदलने लगी। अब वे किन्नरों को केवल आशीर्वाद के लिए नहीं, बल्कि अपने पारिवारिक उत्सवों का हिस्सा बनाने लगे। अर्धांश और उसकी टीम ने स्वास्थ्य शिविरों का आयोजन किया, रोजगार के अवसरों पर काम किया, और मानसिक स्वास्थ्य जैसे महत्वपूर्ण विषयों को भी समाज के सामने लाया। माता पद्मावती अक्सर गर्व से कहतीं कि अर्धांश ने उनके

समाज को एक नया जीवन दिया है—वह केवल एक किन्नर नहीं, बल्कि एक परिवर्तन का स्रोत है।

यह बदलाव केवल परिस्थितियों का नहीं, बल्कि दृष्टिकोण का परिवर्तन था। किन्नर समाज, जो कभी उपेक्षा और अज्ञानता की छाया में था, अब धीरे-धीरे प्रकाश की ओर बढ़ रहा था। उनकी पहचान बदल रही थी—वे अब दया के पात्र नहीं, बल्कि सम्मान और शक्ति के प्रतीक बनते जा रहे थे। और इस परिवर्तन के केंद्र में था अर्धांश—जो अपनी यात्रा में अकेला नहीं था, बल्कि अपने साथ एक पूरे समाज को आगे लेकर चल रहा था।

अध्याय 6:

अंधेरा और उजाला - अर्धांश की परीक्षा

अर्धांश की ज़िंदगी में एक ऐसा मोड़ आया, जब उसे केवल समाज से नहीं, बल्कि अपने भीतर उठते भय और अंधेरे से भी सामना करना पड़ा। गाँव में अचानक कोविड-19 जैसी एक भयानक महामारी फैल गई। हवा में डर घुल गया, गलियों में सन्नाटा उतर आया, और हर घर किसी अनकहे भय की गिरफ्त में था। इस संकट से किन्नर समाज भी अछूता नहीं रहा। पर जहाँ अधिकांश लोग खुद को बचाने में लगे थे, वहीं अर्धांश और उसकी टीम एक दीपक की तरह इस अंधेरे में जल उठे।

PPE किट में ढँके हुए, चेहरों पर थकान और आँखों में दृढ़ता लिए, वे हर दिन सेवा में जुट जाते। उन्होंने NGOs के साथ मिलकर स्वास्थ्य शिविर आयोजित करवाए, और अर्धांश के कॉलेज के LGBTQ साथी भी इस अभियान में कंधे से कंधा मिलाने आ पहुँचे। यह केवल मदद नहीं थी, यह साहस का एक जीवंत रूप था—जहाँ भय से बड़ा उद्देश्य था। किन्नर समाज ने अपनी भक्ति और आत्मिक शक्ति से पीड़ितों को आशीर्वाद दिया, और जो लोग निराशा में डूब रहे थे, उनके मन में फिर से आशा की लौ जलाई।

सबसे कठिन क्षण वे थे, जब मृत्यु दरवाज़े पर दस्तक देती थी। महामारी ने लोगों को इतना डरा दिया था कि कई बार अपने ही अपनों को छूने से कतराने लगे। ऐसे समय में अर्धांश और उसकी टीम आगे बढ़े। उन्होंने पंडित जी की सहायता से न केवल अंतिम संस्कार किए, बल्कि हर विधि-विधान को पूरे सम्मान और श्रद्धा के साथ निभाया—जैसे हर मृतक उनका अपना ही परिवार हो। हर दिन गाँव

के पीपल के पेड़ के नीचे गरुड़ पुराण का पाठ होता, जहाँ शोक के बीच एक आध्यात्मिक सहारा मिलता। जब एक दिन पंडित जी स्वयं बीमार पड़ गए, तो माता पद्मावती ने यह दायित्व अपने हाथों में लिया, और हर मंत्र, हर क्रिया को उसी श्रद्धा से पूरा किया।

सेवा का यह विस्तार केवल अनुष्ठानों तक सीमित नहीं था। किसी के घर राशन पहुँचाना हो, दवाइयों की व्यवस्था करनी हो, या रातभर जागकर किसी बीमार की देखभाल करनी हो—अर्धांश और उसकी टीम हर मोर्चे पर खड़ी थी। उन्होंने एक स्थानीय NGO की मदद से हेल्पलाइन नंबर जारी किया, जिसे कॉलेज के IT छात्रों ने संभाला। अब गाँव के लिए यह नंबर केवल संपर्क का माध्यम नहीं, बल्कि विश्वास की डोर बन गया था। जैसे ही किसी घर से कॉल आती, टीम का कोई सदस्य तुरंत मदद के लिए पहुँच जाता। यह तकनीक और मानवता का ऐसा संगम था, जिसने पूरे गाँव को एक नए भरोसे से जोड़ दिया।

इस निःस्वार्थ सेवा ने गाँव की सोच को भीतर तक हिला दिया। जो लोग पहले किन्नरों को तिरस्कार से देखते थे, वे अब उनकी ओर सम्मान और कृतज्ञता से देखने लगे। महामारी के अंधेरे में जब अपने भी साथ छोड़ रहे थे, तब किन्नर समाज ने जिस साहस और करुणा का परिचय दिया, उसने लोगों के दिलों में उनकी एक नई छवि बना दी। अब वे केवल एक पहचान नहीं, बल्कि संवेदना, शक्ति और आध्यात्मिक बल के प्रतीक बन चुके थे। यह बदलाव केवल नजरों का नहीं, बल्कि दिलों का परिवर्तन था—एक ऐसी सामाजिक जागृति, जो धीरे-धीरे जड़ पकड़ रही थी।

अर्धांश और उसकी टीम ने सरकारी अस्पतालों के साथ मिलकर भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। जब लोग टीकाकरण से डर रहे थे, तब उन्होंने ग्राम पंचायत, NGOs और स्वास्थ्य विभाग के साथ मिलकर जागरूकता अभियान चलाया।

उनके निरंतर प्रयासों का ही परिणाम था कि गाँव में शत-प्रतिशत वैक्सीनेशन संभव हो पाया। यह केवल एक उपलब्धि नहीं थी, बल्कि यह इस बात का प्रमाण था कि जब सेवा, साहस और सच्ची नीयत एक साथ खड़े हों, तो सबसे कठिन समय को भी बदला जा सकता है।

अध्याय 7:

अंतिम विदाई

अर्धांश को समाज में बढ़ता सम्मान जितना सुकून दे रहा था, उतना ही कुछ लोगों के भीतर असहजता भी जगा रहा था। किन्नर समुदाय का उठता आत्मसम्मान जैसे वर्षों से जमी हुई सोच को चुनौती दे रहा था, और हर चुनौती के साथ कुछ मन और कठोर होते जा रहे थे।

महामारी के दौरान लगाए गए राहत शिविर अब सेवा और परिवर्तन के केंद्र बन चुके थे। दिन में वहाँ बच्चों को पढ़ाया जाता, और रात होते ही वही स्थान योजनाओं का जन्मस्थल बन जाता—

गाँव में कॉलेज खोलने, सड़कों के निर्माण, लड़कियों की शिक्षा और ज़रूरतमंदों के लिए विवाह सहायता जैसे सपनों को आकार दिया जाता।

ऐसी ही एक रात, जब पूरी टीम एक महत्वपूर्ण चर्चा में डूबी हुई थी, अचानक शिविर में आग भड़क उठी। सब कुछ इतना तेज़ हुआ कि किसी को संभलने का मौका ही नहीं मिला। अफरातफरी, चीखें, और लपटों के बीच तीन किन्नरों ने अपनी जान गंवा दी।

सबसे भयावह बात यह थी कि आग का कारण किसी को समझ नहीं आया—न कोई शॉर्ट सर्किट, न कोई चिंगारी—जैसे यह दुर्घटना नहीं, एक रहस्य थी, जो धुएँ में छिपकर रह गया।

खबर मिलते ही माता पद्मावती और किन्नर समाज के लोग घटनास्थल पर पहुँच गए। पर गाँव का कोई व्यक्ति वहाँ नहीं आया। आज भी समाज के कई हिस्सों में

किन्नरों की मृत्यु को लेकर एक अजीब-सी दूरी बनी हुई थी—जैसे जीवन भर उन्हें अलग रखा जाता है, वैसे ही मृत्यु में भी।

माता पद्मावती ने अर्धांश की टीम के छात्रों को घर भेज दिया। अब वहाँ केवल किन्नर समाज के लोग थे—शोक, मौन और एक गहरी आत्मिक एकता के बीच। कुछ सदस्य घटना की सूचना देने पुलिस के पास गए, और बाकी ने उन दिवंगत आत्माओं को नमन कर, अर्धांश को गले लगाकर विदा ली।

अंतिम संस्कार के बाद, जब वातावरण थोड़ा स्थिर हुआ, तब अर्धांश की पूरी टीम वापस वहाँ आ पहुँची।

इस बार कुछ गाँववाले भी आए—शायद शोक उन्हें खींच लाया था, या शायद बदलती सोच का कोई छोटा बीज अब अंकुरित होने लगा था।

उसी समय अर्धांश की टीम की एक लड़की ने जिज्ञासा से किन्नरों के अंतिम संस्कार की विधि के बारे में पूछा। माता पद्मावती ने शांत स्वर में एक कथा सुनानी शुरू की, एक ऐसी कथा, जो पीढ़ियों से किन्नर समाज की स्मृतियों में जीवित थी।

उन्होंने बताया कि जब भगवान शिव ने अर्धनारीश्वर का रूप धारण किया, तब उनकी आँखों से एक दिव्य आँसू पृथ्वी पर गिरा।

उसी आँसू से ऐसी आत्माओं का जन्म हुआ, जो न पूर्ण पुरुष थीं, न स्त्री, बल्कि दोनों के संतुलन का जीवंत प्रतीक थीं।

ऐसी आत्माएँ, जब इस संसार से विदा लेती हैं, तो उनका मार्ग स्वयं दिव्य शक्तियाँ प्रशस्त करती हैं।

कहा जाता है कि उन्हें मोक्ष की ओर ले जाने के लिए गंधर्व और अप्सराएँ भी उतरती हैं। फिर माता ने स्पष्ट किया कि यह कथा कोई शास्त्रीय दावा नहीं, बल्कि उस आत्मिक विश्वास का प्रतीक है, जो किन्नर समाज को उनके अस्तित्व में गरिमा देता है।

इसके बाद उन्होंने किन्नर अंतिम संस्कार की गूढ़ विधि का वर्णन किया। उन्होंने बताया कि ब्रह्म मुहूर्त में अंतिम क्रिया पूरी की जाती है, क्योंकि ऐसी आत्माएँ शीघ्र अपनी यात्रा पर निकलती हैं। उनका शरीर पंच तत्वों में विलीन किया जाता है।

अंतिम यात्रा भी सामान्य नहीं होती—पूर्ण मौन के साथ, चार किन्नर साधक शरीर को लेकर जाते हैं और "अर्धनारी स्तोत्र" का उच्चारण करते हैं।

शरीर को गंध-पुष्पों में लपेटकर अंतिम विदाई दी जाती है। वहाँ कोई रोदन नहीं होता, कोई मृत्यु-घोष नहीं, केवल एक शांत विदाई, जैसे आत्मा स्वयं प्रकाश की ओर बढ़ रही हो।

माता पद्मावती ने अंत में कहा कि जो किन्नर अपने धर्म में स्थिर रहते हैं और जिन्होंने जीवन में सच्चे मन से आशीर्वाद दिया हो, उनकी आत्मा मृत्यु के तीसरे प्रहर में स्वयं देवलोक को प्राप्त होती है।

उन्हें यमदूत स्पर्श तक नहीं करते। यह सुनते ही वहाँ उपस्थित कई लोगों की आँखें नम हो गईं।

पहली बार उन्हें यह एहसास हुआ कि जिसे वे जीवन भर उपेक्षा की दृष्टि से देखते रहे, वही आत्मा मृत्यु के क्षण में प्रकाश का रूप ले लेती है।

शायद इसी कारण उनके आशीर्वाद में वह गहराई और दिव्यता होती है, जिसे शब्दों में नहीं, केवल अनुभव में समझा जा सकता है।

अध्याय 8:

आत्मा का साथी - एक अधूरा मिलन, एक पूर्ण प्रेम

अर्धांश की ज़िंदगी में जहाँ एक ओर आध्यात्मिक साधना और समाज सेवा की उजली लौ थी, वहीं उसके भीतर एक कोमल कोना भी था—नाज़ुक, शांत और अनकहा। उस कोने में प्रेम था, जो कभी किसी घोषणा की तरह नहीं, बल्कि एक धीमी धड़कन की तरह जीता था।वह प्रेम जो सामने आने से पहले ही खुद को समेट लेता था, जैसे कोई दीपक आँधी को देखकर लौ को भीतर मोड़ ले।

कॉलेज की टीम में मीरा भी थी—दृढ़, सौम्य और हर परिस्थिति में अर्धांश के साथ खड़ी रहने वाली। जब अर्धांश मंच पर नृत्य करता, तो भीड़ में कहीं मीरा होती—उसकी आँखों में एक अजीब-सी श्रद्धा, जैसे वह केवल नृत्य नहीं, किसी आत्मा की अभिव्यक्ति देख रही हो।

एक बार जब मीरा के माता-पिता ने किन्नर समाज को अपने घर आमंत्रित किया, तो उस शाम कुछ अलग ही घटा। मीरा ने वैसी ही पायल पहन ली, जैसी अर्धांश पहनता था, और धीरे-धीरे उसके साथ नृत्य में शामिल हो गई। वह दृश्य किसी प्रदर्शन से अधिक था—जैसे दो लहरें एक ही सागर में एक-दूसरे को पहचान रही हों। उसी क्षण अर्धांश और मीरा की आँखें मिलीं, और बिना शब्दों के एक संवाद उनके भीतर उतर गया।

अगले दिन, जब अर्धांश और उसकी टीम बच्चों को पढ़ा रहे थे, मीरा अपने सितार के साथ आई। बच्चों के आग्रह पर उसने एक गीत गाया—पर वह गीत केवल बच्चों के लिए नहीं था। वह उसके मन की अनकही धड़कनों का स्वर था।

उसके शब्दों में कोई माँग नहीं थी, कोई दावा नहीं—बस एक शांत-सी इच्छा थी, कि जहाँ अर्धांश हो, वहाँ उसका अस्तित्व भी किसी कोने में सांस ले सके।

अर्धांश ने उस गीत को सुना, पर कुछ कहा नहीं। क्योंकि वह जानता था—यह प्रेम शब्दों का नहीं, अनुभव का विषय है।

दोनों ने कभी अपने संबंध को नाम देने की कोशिश नहीं की। न कोई वादा, न कोई बंधन—बस एक मौन साथ, जिसमें दिन की थकान भी हल्की लगती थी। वे अलग-अलग कामों में व्यस्त रहते, पर हर शाम माता पद्मावती के आशीर्वाद के लिए एकत्र होते—जैसे दिन का अंत एक ही शरण में होना तय हो। पर गाँव की सीमाएँ इतनी उदार नहीं थीं।

धीरे-धीरे यह संबंध लोगों की नज़रों में आने लगा, और फिर वही हुआ जो अक्सर होता है—फुसफुसाहटें, ताने, और सवाल।

मीरा को तिरस्कार सहना पड़ा, और अर्धांश पर भी दबाव बढ़ने लगा। उसके साथी रवि और नीलम हर मोड़ पर उसके साथ खड़े रहे। रवि ने एक बार कहा था कि जिस प्रेम को समाज समझ नहीं पाता, वही सबसे शुद्ध होता है। पर इस बार बात केवल अर्धांश की नहीं थी—यह मीरा की गरिमा का प्रश्न बन चुका था। अर्धांश ने जीवन में बहुत कुछ सहा था, पर मीरा के लिए उठते प्रश्न उसके भीतर कहीं गहरे उतरते जा रहे थे।

उसके माता-पिता भी उसे संभालने की कोशिश करते, पर समाज की आवाज़ें कभी-कभी सबसे मजबूत हृदय को भी डिगा देती हैं।मीरा के माता-पिता उसके भाव समझते थे। वे अर्धांश के व्यक्तित्व से प्रभावित थे, पर समाज की संरचना में रहते हुए उन्होंने मीरा से कहा कि समय आने पर उसे विवाह करना होगा।

मीरा ने उस बात को टाल दिया—जैसे कुछ निर्णय समय के हवाले कर दिए जाते हैं। एक दिन, अर्धांश की उलझनें उसकी आँखों में उतर आईं। माता पद्मावती ने उसे बिना पूछे समझ लिया। वे मीरा को नदी किनारे ले गईं—जहाँ जल की धारा जैसे हर अनकही बात को सुन लेती है।

वहाँ मीरा ने मुस्कराकर कहा कि उसने अर्धांश के शरीर से नहीं, उसकी आत्मा से प्रेम किया है। वह न केवल स्त्री है, न अर्धांश केवल किन्नर—वे दो आत्माएँ हैं, जिनका मिलन समय की किसी एक रेखा पर निर्भर नहीं।यह जीवन नहीं, तो अगला सही। माता पद्मावती की आँखें भर आईं। उन्होंने मीरा के सिर पर हाथ रखकर कहा कि यह प्रेम किसी रिश्ते का मोहताज नहीं—यह अपने आप में पूर्ण है, संपूर्ण है।

समय बीतता गया। महामारी में किए गए उनके कार्यों के लिए अर्धांश, माता पद्मावती और नीलम को राष्ट्र सेवा पदक से सम्मानित किया गया। उसी दिन, उसी नदी के किनारे, अर्धांश अपनी टीम और बच्चों के साथ था।मीरा अब उस टीम का हिस्सा नहीं थी—जीवन उसे किसी और दिशा में खींच रहा था। पर हवा में कुछ था। कुछ बच्चे वही गीत गुनगुना रहे थे, जो मीरा गाया करती थी।

अर्धांश मुस्कराया—एक शांत, गहरी मुस्कान। जैसे उसे महसूस हो रहा हो कि मीरा कहीं गई नहीं है।

यह प्रेम शब्दों में नहीं बंधा, पर शायद इसलिए वह कभी टूटा भी नहीं।

अध्याय 9:

आध्यात्मिक यात्रा के नए आयाम - आत्मा का विस्तार

अर्धांश की यात्रा अब केवल समाज से टकराने या उसे बदलने तक सीमित नहीं रही थी; वह भीतर की उस गहराई में उतरने लगी थी जहाँ प्रश्न भी शांत हो जाते हैं और उत्तर स्वयं प्रकट होने लगते हैं। उसके जीवन में एक सूक्ष्म, पर अत्यंत शक्तिशाली परिवर्तन आरंभ हो चुका था—जैसे भीतर कोई अदृश्य द्वार खुल रहा हो। इसी समय माता पद्मावती ने उसे एक प्राचीन ग्रंथ सौंपा—'अद्वैत सूत्र'। यह केवल शब्दों का संग्रह नहीं था, बल्कि चेतना की एक यात्रा थी, जिसमें आत्मा और ब्रह्म की एकता का रहस्य छिपा था।

अर्धांश ने जब उसे पढ़ना शुरू किया, तो धीरे-धीरे उसकी दृष्टि बदलने लगी। उसे एहसास हुआ कि यह संसार अलग-अलग रूपों का मेल नहीं, बल्कि एक ही चेतना का विस्तार है—जैसे एक ही दीपक से अनगिनत ज्योतियाँ जल उठें, पर प्रकाश एक ही रहे। ध्यान में बैठते हुए उसने पहली बार अनुभव किया कि उसकी आत्मा उसके शरीर तक सीमित नहीं है। वह जैसे फैलती जा रही थी—हवा में, आकाश में, हर जीवित स्पंदन में। यह अनुभव शब्दों से परे था, पर इतना गहरा कि उसने उसके भीतर एक स्थायी शांति बसा दी।

अब अर्धांश हर व्यक्ति को केवल उसके रूप या पहचान से नहीं, बल्कि उस आत्मा के रूप में देखने लगा, जो उसी की तरह अनंत से जुड़ी है। उसके भीतर करुणा अब प्रयास नहीं रही थी, वह स्वभाव बन चुकी थी। माता पद्मावती के मार्गदर्शन में उसकी साधना और भी गहरी होती गई। चिदाकाश ध्यान के माध्यम से वह चेतना के उस आकाश में उतरने लगा, जहाँ विचार बादलों की तरह आते-

जाते हैं, पर आकाश अडिग रहता है। प्राणायाम और मंत्र-जप ने उसकी ऊर्जा को संतुलित और जागृत किया—जैसे भीतर कोई संगीत धीरे-धीरे सुर में आ रहा हो। और आत्मिक समर्पण ने उसे सिखाया कि सबसे बड़ी शक्ति नियंत्रण में नहीं, बल्कि समर्पण में होती है।

इन साधनाओं के दौरान अर्धांश ने कई रहस्यमय अनुभव किए। कभी ध्यान में उसे दिव्य प्रकाश की झलक मिलती—जैसे अंधकार के भीतर अचानक कोई सूर्य उदित हो गया हो। कभी वह स्वयं को शरीर से परे अनुभव करता—हल्का, मुक्त, जैसे कोई बंधन ही न हो। यह सब उसे विचलित नहीं करता था, बल्कि और अधिक स्थिर बनाता था। वह समझने लगा था कि ये अनुभव लक्ष्य नहीं, बल्कि मार्ग के संकेत हैं।

एक दिन, गहन ध्यान में डूबे हुए, उसे एक अनूठा अनुभव हुआ। उसे लगा जैसे उसकी आत्मा की ऊर्जा अब केवल उसके भीतर नहीं, बल्कि पूरे अस्तित्व में प्रवाहित हो रही है। वह अलग नहीं रहा—वह जुड़ गया था। उस क्षण उसे यह स्पष्ट हो गया कि उसकी यात्रा केवल स्वयं के मोक्ष के लिए नहीं है, बल्कि समस्त मानवता की सेवा के लिए है। जैसे कोई नदी अंततः सागर से मिलकर अपनी सीमाएँ खो देती है, वैसे ही अर्धांश अब अपने "मैं" से आगे बढ़ चुका था।

अब वह केवल अर्धांश नहीं था—वह एक माध्यम बन रहा था, उस चेतना का, जो हर हृदय में एक समान धड़कती है।

अध्याय 10:

अर्धांश का दिव्य दर्शन - एक आध्यात्मिक घटना

एक शांत पूर्णिमा की रात थी—चाँद जैसे आकाश में नहीं, भीतर के जल में भी उतर आया हो। अर्धांश ध्यान में लीन था, उसकी साँसें धीमी, स्थिर, जैसे समय स्वयं उसके साथ बैठ गया हो। तभी उसके भीतर एक अनोखी हलचल उठी। पहले वह एक हल्की कंपन थी, फिर वह कंपन ऊर्जा में बदल गई, और वह ऊर्जा धीरे-धीरे एक तेजस्वी प्रकाश में रूपांतरित होने लगी। उस प्रकाश के मध्य एक दिव्य आकृति प्रकट हुई—ऐसी जिसमें शिव की गंभीरता और अडिग शक्ति थी, तो साथ ही विष्णु की करुणा और असीम शांति भी समाहित थी। वह रूप न पुरुष था, न स्त्री—वह संतुलन था, पूर्णता का जीवंत प्रतीक।

उस प्रकाश से एक स्वर गूँजा—गहरा, पर कोमल, जैसे आकाश बोल रहा हो: "तेरे भीतर वह शक्ति है जो न केवल तुझे, बल्कि सम्पूर्ण मानवता को जागृत करेगी। भय और संदेह को त्याग, अपने कर्मों में श्रद्धा बनाए रखना।" अर्धांश उस अनुभव से चकित रह गया। उसके भीतर एक क्षण के लिए संशय उठा—क्या यह कोई भ्रम है, या ध्यान की कोई कल्पना? पर वह उत्तर तुरंत नहीं मिला, जैसे ब्रह्मांड उसे प्रतीक्षा का पाठ पढ़ा रहा हो।

कुछ दिनों बाद, वह जंगल के बीच अकेले ध्यान में बैठा था। चारों ओर गहरी शांति थी—केवल पत्तों की सरसराहट और पक्षियों की धुन। धीरे-धीरे उसे महसूस हुआ कि समय अपनी गति खो रहा है। उसके आसपास की हर वस्तु जैसे पिघलने लगी—पेड़, हवा, ध्वनि—सब कुछ एक निराकार विस्तार में विलीन होने लगा।

और उसी क्षण, अर्धांश ने अपने अस्तित्व को शरीर की सीमाओं से ऊपर उठते हुए महसूस किया।

वह अब "वह" नहीं रहा था—वह फैल रहा था। उसकी चेतना आकाश में घुल गई, जैसे एक बूँद सागर में नहीं, बल्कि सागर स्वयं बूँद में उतर आया हो। उसने हर जीव के भीतर उसी ऊर्जा को महसूस किया—एक ही स्पंदन, एक ही जीवन। उस अनुभव में उसे स्पष्ट दिखाई दिया कि मनुष्य के दुःख, भय और बंधन बाहर से नहीं आते—वे भीतर के अहंकार से जन्म लेते हैं। अहंकार, जो स्वयं को अलग समझता है, वही अंधकार रचता है। उसी शून्य में, उसी विस्तार में, एक और स्वर उभरा—इस बार जैसे वह उसके भीतर से ही आ रहा हो: "जब तू अपने अहंकार को छोड़ देगा, तभी तेरा असली स्वभाव प्रकट होगा। तब तू उस ज्योति को देखेगा, जो कभी बुझती नहीं।"

इस बार अर्धांश ने कोई संदेह नहीं किया। उसने समझ लिया—यह कोई भ्रम नहीं, यह संवाद है। कोई बाहरी नहीं, बल्कि वही चेतना, जिससे सब कुछ जन्म लेता है। उसने अपने हृदय को पूरी तरह खोल दिया—बिना भय, बिना प्रश्न।वह अनुभव उसके भीतर गहराई तक उतर गया। उसका मन स्थिर हो गया, जैसे किसी ने भीतर की सारी उलझनों को सुलझाकर एक शांत सरोवर बना दिया हो। उसकी आत्मा ने उस दिव्य शक्ति के साथ एक ऐसा संबंध महसूस किया, जो शब्दों से नहीं, केवल अनुभव से जाना जा सकता है।

उस दिन के बाद अर्धांश बदल गया। अब वह केवल ध्यान में ही नहीं, हर क्षण उस चेतना को देखने लगा—लोगों में, प्रकृति में, यहाँ तक कि साधारण घटनाओं में भी। उसके लिए जीवन अब केवल बाहरी संघर्ष नहीं रहा; वह एक आध्यात्मिक यात्रा बन चुका था—एक ऐसा युद्ध, जिसमें जीत तलवार से नहीं, बल्कि अहंकार को त्यागने से मिलती है।

अध्याय 11:

अर्धांश की क्रांति - समाज में बदलाव और नए चेहरों का आगमन

अर्धांश के उस गहरे आध्यात्मिक अनुभव के बाद उसकी दृष्टि जैसे एक नई धुरी पर टिक गई। अब उसके भीतर केवल सेवा का भाव नहीं था, बल्कि एक स्पष्ट दिशा थी—जैसे धुंध छंट चुकी हो और रास्ता स्वयं उजागर हो गया हो। वह अब केवल किन्नर समाज तक सीमित नहीं रहना चाहता था; उसकी चाहत थी कि हर मनुष्य अपने भीतर की उस ज्योति को पहचाने, जो उसे भय, भेदभाव और सीमाओं से मुक्त कर सकती है।

गाँव के लोग, किन्नर समाज और बच्चों के माता-पिता—सभी धीरे-धीरे उसके साथ खड़े होने लगे। आर्थिक सहायता आने लगी, पर उससे भी अधिक मूल्यवान था वह विश्वास, जो अब लोगों के दिलों में जन्म ले चुका था। अर्धांश ने इस विश्वास को कर्म में बदलना शुरू किया। गाँव में एक 'साक्षरता केंद्र' स्थापित हुआ—एक ऐसा स्थान, जहाँ पढ़ाई केवल अक्षरों तक सीमित नहीं थी। वहाँ लोग योग सीखते, ध्यान करते, और अपने भीतर झाँकने की कला को समझते। यह केंद्र धीरे-धीरे एक जीवंत स्थान बन गया—जहाँ शरीर, मन और आत्मा तीनों का संतुलन साधा जाता था।

स्वास्थ्य के क्षेत्र में नीलम ने एक नई दिशा दी। उसने मानसिक स्वास्थ्य पर विशेष ध्यान केंद्रित किया—लोगों को यह समझाने का प्रयास किया कि मन के घाव भी उतने ही वास्तविक होते हैं जितने शरीर के। परामर्श सत्र शुरू हुए, जहाँ लोग बिना झिझक अपनी बात कहने लगे। अर्धांश और माता पद्मावती ने मिलकर

आध्यात्मिक संवादों की शुरुआत की। वे पौराणिक कथाओं और गूढ़ शास्त्रों के माध्यम से जीवन के गहरे सत्य सरल भाषा में समझाने लगे। किन्नर समाज अब केवल एक समुदाय नहीं, बल्कि एक मार्ग बन रहा है—जहाँ आध्यात्मिकता और सामाजिक सुधार साथ-साथ चल रहे हैं।

समय के साथ नए लोग भी इस यात्रा में जुड़ने लगे। रागिनी, एक युवा विदुषी और गीतकार, अपने शब्दों में अर्धांश के विचारों को पिरोने लगी। उसके गीत केवल मनोरंजन नहीं थे—वे भावनाओं के पुल थे, जो लोगों के दिलों को जोड़ते थे। विवेक, शहर से आया एक युवा सामाजिक कार्यकर्ता, अपने साथ तकनीक और आधुनिक सोच लेकर आया। उसने डिजिटल शिक्षा, स्वच्छता अभियान और नई प्रणालियों को गाँव में स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। वहीं सावित्री माता, जो कभी संदेह की दृष्टि से सब कुछ देखती थीं, अब इस परिवर्तन की साक्षी बनकर स्वयं एक मार्गदर्शक बन गईं। उनका अनुभव और अर्धांश की ऊर्जा मिलकर एक संतुलन रच रहे थे—पुराने और नए का सुंदर संगम।

जो दूरी कभी वर्ग, जाति और पहचान के कारण बनी थी, वह अब पिघलने लगी। किन्नर समाज, जो कभी हाशिये पर था, अब केंद्र में खड़ा था—सम्मान के साथ, आत्मविश्वास के साथ। शिक्षा का विस्तार हुआ, स्वास्थ्य सुविधाएँ बेहतर हुईं, और सबसे महत्वपूर्ण—लोगों के भीतर सोच बदलने लगी।

यह केवल एक बदलाव नहीं था, यह एक नया अध्याय था—जहाँ विविधता को विभाजन नहीं, बल्कि शक्ति के रूप में देखा जाने लगा। जहाँ आध्यात्मिकता केवल पूजा तक सीमित नहीं रही, बल्कि जीवन जीने का आधार बन गई। इस सबके केंद्र में था अर्धांश, जो एक विचार बन चुका था…

अध्याय 12:

संघर्ष की घड़ी - जब बदलाव की राह कठिन हुई

गांव में चल रहे बदलाव जैसे नई सुबह की तरह थे—कुछ के लिए उजाला, तो कुछ के लिए आँखों को चुभती चमक। जहाँ कई लोग अर्धांश के प्रयासों से प्रेरित हो रहे थे, वहीं कुछ पारंपरिक और रूढ़िवादी वर्गों के भीतर असंतोष धीरे-धीरे आकार लेने लगा। उन्हें लगने लगा कि यह नई सोच कहीं उनकी पुरानी जड़ों को कमजोर न कर दे।

सावित्री माता की कुछ पुरानी समर्थक महिलाओं ने खुलकर विरोध शुरू कर दिया। उन्होंने 'परंपरा बचाओ' नामक एक समूह बनाया, और अर्धांश के साक्षरता केंद्र तथा खुले धार्मिक संवादों को अपनी संस्कृति के लिए खतरा बताने लगीं।

वातावरण में अब एक अनकहा तनाव तैरने लगा। रागिनी, जो अपने गीतों से लोगों के दिलों तक पहुँचती थी, अब उसी आवाज़ के कारण निशाने पर आ गई। उसके गीतों को कुछ लोग विद्रोह मानने लगे, और उसे धमकियाँ मिलने लगीं। दूसरी ओर विवेक, जो गाँव में तकनीक और आधुनिक सुविधाओं को ला रहा था, उसके प्रयासों को भी विरोध का सामना करना पड़ा। कुछ लोगों ने गुस्से में आकर स्कूल और स्वास्थ्य केंद्र के उपकरणों को नुकसान पहुँचाना शुरू कर दिया—जैसे विकास के बीजों को अंकुरित होने से पहले ही कुचल देना चाहते हों।

अर्धांश को भी धमकियाँ मिलने लगीं—उसे चेतावनी दी गई कि वह अपने कदम पीछे खींच ले। पर अर्धांश अब उस जगह पहुँच चुका था जहाँ भय उसे रोक नहीं सकता था। उसके भीतर की शांति ही उसकी सबसे बड़ी शक्ति बन चुकी थी।

उसने टकराव का रास्ता नहीं चुना, बल्कि संवाद का मार्ग अपनाया। उसने गाँव के हर वर्ग को एक सभा में आमंत्रित किया—एक ऐसा मंच, जहाँ हर आवाज़ सुनी जा सके।

उस सभा का नेतृत्व गाँव के पुजारी जी और माता पद्मावती कर रहे थे—परंपरा और आध्यात्मिकता, दोनों की उपस्थिति उस स्थान को संतुलन दे रही थी। अर्धांश ने शांत लेकिन दृढ़ स्वर में कहा कि परंपरा और बदलाव दो विरोधी ध्रुव नहीं हैं, बल्कि एक ही वृक्ष की जड़ और शाखाएँ हैं। जड़ों को बचाए बिना शाखाएँ नहीं फलतीं, और शाखाओं के बिना जड़ें अर्थहीन हो जाती हैं। उसने सभी को आश्वस्त किया कि उनका उद्देश्य परंपरा को मिटाना नहीं, बल्कि उसे समय के साथ जीवित रखना है।

लंबी चर्चा के बाद यह निर्णय लिया गया कि एक ऐसा उत्सव मनाया जाए, जहाँ पुरानी और नई परंपराएँ एक साथ साँस लें। त्योहार की तैयारी शुरू हुई। शिव और पार्वती माता की प्रतिमाओं की पूजा की गई, भंडारे का आयोजन हुआ, और आसपास के गाँवों को भी आमंत्रित किया गया। बच्चों के लिए मेला सजा—हँसी, रंग और संगीत से भरा हुआ। यह केवल एक उत्सव नहीं था, बल्कि एक सेतु था—जो दो पीढ़ियों, दो सोचों को जोड़ रहा था।

अर्धांश और उसकी टीम ने इस आयोजन का पूरा खर्च अपने समाज सेवा फंड से उठाया। इस पहल ने लोगों के दिलों को छू लिया। जो लोग पहले विरोध में खड़े थे, वे भी धीरे-धीरे इस प्रयास के पीछे की भावना को समझने लगे। उन्हें

एहसास हुआ कि बदलाव का अर्थ विनाश नहीं, बल्कि विस्तार भी हो सकता है।

गाँव में जैसे एक नया संतुलन जन्म ले चुका था—जहाँ परंपरा अपनी गरिमा के साथ खड़ी थी, और बदलाव उसके साथ हाथ थामे आगे बढ़ रहा था।

अध्याय 13:

अंधकार की छाया - एक बड़ी चुनौती का आगमन

अर्धांश के गाँव की हवा, जो कुछ समय पहले तक आशा से भरी थी, अब सूखे पत्तों की तरह खड़खड़ाने लगी थी। जल संकट धीरे-धीरे नहीं, बल्कि चुपचाप आया।

नदी का बहाव कम होने लगा, कुएँ सूखने लगे, खेतों की हरियाली पीली पड़ गई। मिट्टी, जो कभी अन्न उगाती थी, अब धूल बनकर उड़ने लगी। पशु-पक्षी भी इस बदलाव से अछूते नहीं रहे—उनकी आँखों में भी वही प्यास थी, जो अब इंसानों की आँखों में उतर आई थी। गाँव, जो अभी कुछ समय पहले एकता और प्रगति की बात कर रहा था, अब डर और अनिश्चितता की गिरफ्त में था।

कुछ लोगों ने इस आपदा को आस्था से जोड़ना शुरू कर दिया। अफवाहें हवा में फैलने लगीं—कि किन्नरों द्वारा शिव-पार्वती की पूजा करने से ईश्वर नाराज़ हो गए हैं, कि परंपराओं का उल्लंघन हुआ है, और उसी का परिणाम यह जल संकट है। ये बातें धीरे-धीरे ज़हर की तरह फैलने लगीं, और जो संतुलन अर्धांश ने बड़ी मेहनत से बनाया था, वह फिर से डगमगाने लगा।

इस संकट ने पूरे गांव के जीवन को झकझोर दिया था। खेत सूख रहे थे, तालाबों का पानी दिन-ब-दिन घटता जा रहा था। लोगों के मन में निराशा घर करने लगी थी, जो कई बार गुस्से के रूप में बाहर फूट पड़ती थी।

इस विकट स्थिति में अर्धांश और उसकी टीम ने मोर्चा संभाला। उसने गांव वालों को एकत्र कर कहा कि वे सब मिलकर इस संकट को पार कर सकते हैं, बशर्ते वे प्रकृति की समझ के साथ-साथ विज्ञान और सामूहिक प्रयास की राह अपनाएं।

अर्धांश और विवेक ने मिलकर सरकार और स्वयंसेवी संस्थाओं से संपर्क साधा, जिसके बाद गांव में वर्षा जल संचयन, तालाबों की सफाई और छोटे बाँधों के निर्माण का कार्य शुरू हुआ। खेतों में ड्रिप इरिगेशन जैसी जल-संरक्षण तकनीकों को अपनाया जाने लगा, जबकि नीलम ने साफ पानी और स्वच्छता के महत्व पर कार्यशालाएं आयोजित कर महिलाओं और बच्चों को जलजनित रोगों से बचाव के सरल उपाय सिखाए।

इसके साथ ही अर्धांश ने एक और मार्ग चुना, उसने आसपास के गांवों के पुरोहितों को आमंत्रित कर जल देवता के लिए यज्ञ और हवन आयोजित कराए। यह केवल धार्मिक अनुष्ठान नहीं था, बल्कि लोगों की आस्था को ऊर्जा देने वाला एक सार्वजनिक संकल्प था, जिसमें जल को केवल संसाधन नहीं बल्कि पूज्य तत्व के रूप में प्रस्तुत किया गया।

फिर भी यह राह आसान नहीं थी। संकट के बीच कुछ कट्टरपंथी समूह फिर सक्रिय हो उठे और अर्धांश की बढ़ती स्वीकार्यता उन्हें खटकने लगी।

एक रात, जब पूरा गांव नींद में डूबा था, नव-निर्मित बाँध का एक हिस्सा रहस्यमयी ढंग से टूट गया, जिससे बाढ़ का खतरा मंडराने लगा। स्थिति की गंभीरता को समझते हुए अर्धांश ने युवाओं को संगठित किया और बिना समय गंवाए स्वयं मौके पर पहुंचकर मरम्मत कार्य शुरू करवाया। साथ ही बाहर से विशेषज्ञों की सलाह लेने की भी योजना बनाई गई, और रातभर में जितना संभव था, उतना कार्य पूरा किया गया।

अगली सुबह गांव में एक अजीब सा सन्नाटा पसरा था। न पक्षियों की चहचहाहट सुनाई दे रही थी, न कुत्तों की भौंक। कुछ किसानों ने धीमे स्वर में कहा कि जैसे धरती की धड़कन ही धीमी हो गई हो। अर्धांश ने पूरे गांव में जल स्रोतों की निगरानी और पूजा-अनुष्ठानों का आयोजन जारी रखा, लेकिन उसके भीतर एक

अनजानी बेचैनी जन्म लेने लगी थी। तभी एक नई घटना ने सबको और विचलित कर दिया।

उस सुबह सूरज की किरणें असामान्य रूप से तीखी थीं, मानो वह सब कुछ जला देने पर आमादा हो। गांव की दक्षिण दिशा में स्थित पुरानी बावड़ी के पास धरती में हल्की दरारें पड़ने लगीं, जो दिन-ब-दिन गहरी होती जा रही थीं। जानवरों ने वहाँ जाना बंद कर दिया था और बच्चों को भी घर से दूर जाने से रोका जाने लगा।

रात में कई लोगों ने भयावह सपने देखे—जलती हुई नदियाँ, विकृत आकृतियाँ और धरती से उठती कराहें। चारों ओर सूखा था, धरती फट रही थी, धूप का प्रकोप असहनीय हो चुका था, और हर व्यक्ति भीतर ही भीतर भय से कांप रहा था। लोग ईश्वर से बस यही प्रार्थना कर रहे थे कि किसी तरह यह समय टल जाए, लेकिन परिस्थितियाँ जैसे किसी अनदेखी दिशा में बढ़ती जा रही थीं।

इसी बीच कुछ कट्टरपंथी लोगों को अर्धांश और किन्नर समाज की बढ़ती प्रतिष्ठा को गिराने का अवसर मिल गया। उन्होंने अफवाहें फैलानी शुरू कर दीं कि जब से गांव ने किन्नरों को स्वीकार किया है, तब से न उनके आशीर्वाद का असर रहा और न ईश्वर की कृपा—मानो पूरा गांव किसी सामूहिक शाप के घेरे में आ गया हो। धीरे-धीरे कुछ लोग इन बातों पर विश्वास करने लगे और आपदा के बीच सामाजिक भेदभाव फिर सिर उठाने लगा।

किन्नर शिविर में, जहाँ अर्धांश की टीम ने NGO, ग्राम पंचायत और सरकार की मदद से स्वच्छ पेयजल की व्यवस्था की थी, अब कई गांव वालों ने पानी लेना बंद कर दिया। परिणामस्वरूप कई घरों में बीमारियों का खतरा बढ़ने लगा। साफ पानी के अभाव में बच्चों और बुजुर्गों की सेहत पर असर पड़ने लगा, लेकिन भय ने समझ पर पर्दा डाल दिया था।

दोपहर अपने चरम पर थी, हवा जैसे थम गई थी और गांव की गलियों में सन्नाटा पसरा था, पर हर घर के भीतर बेचैनी उफन रही थी।

इसी बीच गांव की सत्तर वर्षीय बुज़ुर्ग रामदुलारी अपने बीमार पोते अर्जुन के पास बैठी थी। उसका शरीर तप रहा था, होंठ सूख चुके थे। वह बुदबुदाईं कि बावड़ी का पानी खारा है और कुएं का पानी गंदा, अब क्या करें। कांपते हाथों से उन्होंने एक लोटा उठाया और किन्नर शिविर की ओर बढ़ने लगीं।

रास्ते में कुछ लोगों ने उन्हें रोकने की कोशिश की, चेतावनी दी कि वहाँ का पानी अब शुद्ध नहीं रहा, लेकिन रामदुलारी ने ठहरकर केवल इतना कहा कि बीमारी को कोई भेद नहीं दिखता, पानी को भी मत दिखाओ। यह सुनकर चारों ओर सन्नाटा छा गया और वह बिना रुके आगे बढ़ गईं।

शिविर पर एक किन्नर उपस्थित था। उसने दादी की थकान, लोगों की निगाहें और उस क्षण का भार सब समझ लिया। वह हाथ जोड़कर खड़ा हुआ और मुस्कराया। दादी ने लोटा आगे बढ़ाया, उसने उसे भरकर सौंप दिया। दोनों की आंखों में नमी थी। किसी ने कुछ नहीं कहा, लेकिन उस मौन में करुणा, साहस और सत्य एक साथ उपस्थित थे।

पर यह शांति अधिक देर टिकने वाली नहीं थी। अचानक तेज हवाएं चलने लगीं, पेड़ झुक गए, बच्चों की आंखों में जलन होने लगी।

उत्तर दिशा से एक भयानक धूलभरी आँधी उठी, जो सामान्य नहीं थी। वह धूल जैसे जीवित हो—घरों में घुसती, खिड़कियों को हिलाती, और जहाँ भी जाती, वहाँ पानी के घड़े टूट जाते, पौधे मुरझा जाते और लोगों को सांस लेने में कठिनाई होने लगती। महामारी के समय बांटे गए मास्क फिर से चेहरे पर लौट आए।

रात होते-होते पूरे गांव में एक सभा बुलाई गई। भय और बेचैनी अब शब्दों में बदलने लगी थी। कुछ लोगों ने कहा कि यह कोई प्राकृतिक घटना नहीं, बल्कि किसी ऊपरी शक्ति का संकेत है, और शायद वे सच में किसी गंभीर पाप के भागीदार बन गए हैं। तभी एक बूढ़े ग्रामीण ने धीमे स्वर में कहा कि उसने सुना है दक्षिण की पहाड़ी पर वर्षों से एक योगिनी तपस्या कर रही हैं, जिनका नाम कोई नहीं लेता, पर कुछ लोग उन्हें तीनों लोकों की ज्ञाता मानते हैं। शायद अब वही अंतिम आशा हैं और वही इस आपदा का कारण भी समझा सकती हैं।

उसकी बात के बाद सभा में सन्नाटा छा गया, लेकिन इस बार यह सन्नाटा डर के साथ-साथ उम्मीद से भी भरा था। धीरे-धीरे लगभग सभी गांव वालों ने इस विचार पर सहमति जताई, और किन्नर समाज सहित अर्धांश की टीम ने भी इसे स्वीकार किया, क्योंकि उनके लिए सबसे महत्वपूर्ण था—इस संकट से गांव को बाहर निकालना, चाहे इसके लिए उन्हें किसी भी मार्ग पर क्यों न जाना पड़े।

अध्याय 14:

त्रियम्बका का आगमन - पर्वत से उतरती छाया

गांव में फैले की गूंज अब मानो पर्वतों तक पहुँच चुकी थी। जल-संकट, भूमि में पड़ती गहरी दरारें और सूर्य की असहनीय तपन—सब कुछ किसी अदृश्य शक्ति के दंड जैसा प्रतीत हो रहा था।

इस आपदा का मूल कारण जानने के लिए गांव के कुछ जागरूक युवाओं ने दक्षिण की पहाड़ी की ओर प्रस्थान करने का निर्णय लिया। इस समूह में अर्धांश और उसकी टीम से रवि भी शामिल था। किन्नरों को साथ ले जाने पर कुछ कट्टरपंथी भड़क उठे और विरोध करने लगे कि इन्हीं की वजह से यह सब हो रहा है, लेकिन गांव के कुछ समझदार बुज़ुर्गों ने उन्हें शांत करते हुए कहा कि निर्णय जल्दबाज़ी में नहीं लिया जाना चाहिए, माँ स्वयं सत्य प्रकट करेंगी। यदि उन्होंने किन्नरों को दोषी ठहराया तो सब स्पष्ट हो जाएगा, और यदि नहीं, तो सभी को अपनी सोच पर पुनर्विचार करना होगा। इसलिए यह तय हुआ कि किन्नर भी गवाह के रूप में इस यात्रा में साथ रहेंगे।

पहाड़ी की चढ़ाई कठिन थी और चोटी पर पहुँचते-पहुँचते कड़ाके की ठंड ने सबको कंपा दिया। हवा तेज थी, लेकिन उस वातावरण में एक अजीब-सी स्थिरता भी थी। गुफा के बाहर कुछ काले कुत्ते शांत खड़े थे, जैसे किसी के आने की प्रतीक्षा कर रहे हों। जैसे ही लोगों की आहट हुई, वे अचानक भौंकने लगे, जिससे गांव वाले घबरा गए और कुछ ने डंडे उठा लिए। तभी गुफा के भीतर से एक तेजस्विनी बुजुर्ग स्त्री बाहर आईं। उनके प्रकट होते ही कुत्ते तुरंत शांत हो गए और उनके चरणों में आकर बैठ गए, मानो किसी अदृश्य आदेश का पालन कर रहे हों।

वह थीं त्रियम्बका—एक योगिनी, एक तपस्विनी, एक रहस्यमयी सत्ता, जो पिछले चालीस वर्षों से इस पर्वत पर तपस्यारत थीं। पर उनका स्वरूप समय की सीमाओं से परे प्रतीत होता था। उनका चेहरा युवा था, मानो बीस वर्ष की बालिका हो, पर आँखों में युगों का अनुभव और तेज समाया हुआ था। उनकी गहरी, घनी जटाएँ उनके मस्तक पर ऐसे विराजमान थीं, मानो अंधकार का राजमुकुट स्वयं उन्हें अलंकृत कर रहा हो। देह भभूत से आच्छादित थी और काली साड़ी में लिपटा उनका व्यक्तित्व ऐसा प्रतीत होता था मानो स्वयं अंधकार भी उनके सामने मार्ग छोड़ देता हो।

गांव वालों ने उनके सामने सिर झुका दिए। वातावरण में भय, श्रद्धा और आशा—तीनों एक साथ उपस्थित थे। त्रियम्बका ने गंभीर स्वर में कहा कि वह स्वयं उसी रात गांव आने वाली थीं, क्योंकि उनके इष्ट ने संकेत दिया था कि इस संकट का समाधान अब टाला नहीं जा सकता। यह सुनकर लोगों में हलचल हुई। एक व्यक्ति ने हाथ जोड़कर विनती की कि वे समाधान बताएं।

त्रियम्बका ने शांत किंतु दृढ़ स्वर में कहा कि रात को नदी के किनारे पूरा गांव एकत्रित हो, तभी सत्य प्रकट होगा। उनके शब्द आदेश की तरह गूंजे और वहां उपस्थित हर व्यक्ति के मन में एक अनजाना कंपन भर गया। पहाड़ी की ठंडी हवा अब और भी भारी लगने लगी थी, मानो आने वाली रात अपने भीतर कोई ऐसा रहस्य छिपाए बैठी हो, जो पूरे गांव की दिशा बदलने वाला था।

अध्याय 15:

तत्त्व होम - आत्मा की अग्नि, प्रकृति से प्रार्थना

रात का तीसरा पहर था। चाँद अपनी पूर्णता को छू रहा था और नदी के किनारे रखे दीपक हल्की हवा में टिमटिमा रहे थे। उसी शांत, रहस्यमयी क्षण में त्रियम्बका गांव में उतरीं। उनका आगमन इतना दिव्य था कि कुछ ग्रामीणों की आंखों से बिना किसी कारण के अश्रु बहने लगे। वातावरण में एक अनजानी शांति फैल गई। जानवर और पक्षी तक चुपचाप नदी के किनारे आकर बैठ गए, जैसे वे भी इस क्षण के साक्षी बनना चाहते हों।

त्रियम्बका को धीरे-धीरे चलते हुए देख ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो स्वयं माँ काली पृथ्वी पर अवतरित हो रही हों।उनकी बड़ी-बड़ी आंखों में ऐसा तेज था कि अंधेरे में भी वे हर व्यक्ति की आत्मा के भीतर झांकती हुई प्रतीत होती थीं। उनके हाथों में एक प्राचीन ग्रंथ था। उन्होंने हल्की मुस्कान के साथ सिर झुकाकर सबके नमन को स्वीकार किया, और फिर गांव वालों ने अपनी व्यथा कहना शुरू किया।

लोगों की आवाज़ों में भय, पश्चाताप और असहायता एक साथ झलक रही थी। कोई कह रहा था कि गांव की हालत उनके सामने है, कहीं ज़मीन में दरारें बढ़ रही हैं तो कहीं पानी का अकाल पड़ गया है, सूर्य का प्रकोप अलग से सहना पड़ रहा है। कुछ लोगों ने इसे अपने पापों का परिणाम बताया, तो एक कट्टरपंथी सदस्य ने यहां तक कह दिया कि वे किन्नरों के साथ अब कभी नहीं रहेंगे और यही सब अनर्थ का कारण हैं। सभी एक स्वर में प्रार्थना करने लगे कि उन्हें इस ईश्वरीय शाप से बचा लिया जाए। जब सब अपनी बात कहकर शांत हो गए, तो उनकी आंखों में केवल प्रश्न थे।

त्रियम्बका ने गहरे, स्थिर स्वर में कहा कि ईश्वर किसी को शाप नहीं देते, वे केवल मनुष्य को उसके कर्मों का दर्पण दिखाते हैं। यह सुनते ही भीड़ में एक हलचल सी हुई, जैसे किसी ने उनके भीतर छिपे सत्य को छू लिया हो। उन्होंने कुछ क्षण रुककर अपने साथ लाए ग्रंथ को स्पर्श किया और आगे बढ़ते हुए बोलीं कि यह 'नील-संहिता' है, जो उन्हें हिमालय के तपस्वियों से प्राप्त हुई थी। इसमें पंचतत्त्व—जल, अग्नि, वायु, पृथ्वी और आकाश—के असंतुलन से उत्पन्न प्रलय और उनके समाधान का वर्णन है, पर हर समाधान एक कीमत मांगता है।

वह भीड़ के बीच से गुजरते हुए धीरे-धीरे अर्धांश के पास आकर रुकीं। उन्होंने उसके सिर पर हाथ रखा और कहा कि ईश्वर ने उन्हें इसलिए भेजा है क्योंकि उसने अब तक हार नहीं मानी। उसका त्याग और संघर्ष ही वह कारण है जिसके चलते यह गांव अभी भी जीवित है। यह सुनते ही गांव वालों के सिर झुक गए और उनके भीतर पश्चाताप की भावना और गहरी हो गई। कुछ ने स्वीकार किया कि उनसे भूल हुई है, वे किन्नरों को दोष देते रहे जबकि संकट का असली कारण कुछ और था।

त्रियम्बका ने शांत मुस्कान के साथ कहा कि यह पंचतत्त्वों की नाराज़गी है और उनसे क्षमा याचना करनी होगी। पर यह कार्य कोई साधारण मनुष्य नहीं कर सकता, इसके लिए एक दिव्य आत्मा की आवश्यकता होती है जो 'तत्त्व होम' कर सके। यह शब्द सुनते ही लोगों में फुसफुसाहट फैल गई। सभी जानना चाहते थे कि यह तत्त्व होम क्या होता है। तब त्रियम्बका ने स्पष्ट किया कि इस होम में न अग्नि जलाई जाएगी, न आहुति दी जाएगी, बल्कि एक दिव्य आत्मा पंचतत्त्वों के घेरे में बैठकर अपनी आत्मा की अग्नि से स्वयं का समर्पण करेगी। यह समर्पण मूक होगा, पर उसकी गूंज आकाश तक पहुंचेगी।

भीड़ में से किसी ने पुजारी जी का नाम लिया। पुजारी जी स्वयं उठ खड़े हुए और विनम्रता से पूछा कि इस अनुष्ठान के लिए क्या सामग्री आवश्यक होगी। त्रियम्बका ने उनकी ओर देखते हुए शांत स्वर में कहा कि इस होम में अग्नि कोई पुजारी नहीं जलाएगा, बल्कि एक ऐसा व्यक्ति जो अपने असली स्वरूप में जीता है, जिसने पीड़ा को सहकर अपने भीतर की अग्नि को प्रज्ज्वलित किया है, वही इसे पूर्ण कर सकता है। अब भीड़ में बेचैनी बढ़ने लगी। लोग एक-दूसरे की ओर देखने लगे, कोई अनुमान लगाने लगा कि वह व्यक्ति कौन हो सकता है।

तभी त्रियम्बका ने बिना किसी संकोच के अर्धांश की ओर संकेत किया और कहा कि यह तत्त्व होम वही करेगा। वही वह दिव्य आत्मा है जिसके आशीर्वाद से अब तक इस गांव का उद्धार होता आया है। यह सुनकर अर्धांश एक पल के लिए स्तब्ध रह गया। उसने हिचकिचाते हुए कहा कि वह न तो संन्यासी है, न ब्राह्मण, वह तो एक किन्नर है, जिसे न वैदिक श्लोकों का ज्ञान है और न विधियों का।

माता पद्मावती ने उसके कंधे पर हाथ रखकर कहा कि असली अग्नि बाहर नहीं, भीतर जलती है। उसके भीतर जो तप है, वही इस अनुष्ठान की शक्ति बनेगा। त्रियम्बका के वचनों पर संदेह करने का कोई कारण नहीं है। यह सुनकर पूरा गांव स्तब्ध रह गया। जो लोग कभी किन्नरों को तिरस्कार की दृष्टि से देखते थे, वे अब उनके सामने हाथ जोड़कर खड़े थे।

वातावरण में विद्रोह का स्थान श्रद्धा ने ले लिया था। माता पद्मावती और अर्धांश के साथ-साथ उसके माता-पिता की आंखों में भी आंसू थे। यह केवल एक अनुष्ठान नहीं, बल्कि एक गहन आत्मिक उत्तरदायित्व था।

त्रियम्बका ने अंत में स्पष्ट और गूंजती हुई आवाज़ में कहा कि यह होम तभी पूर्ण होगा जब अर्धांश इसे अपने वास्तविक स्वरूप में करेगा। उनके शब्द हवा में

स्थिर हो गए, जैसे स्वयं समय ने उस क्षण को थाम लिया हो, और हर व्यक्ति के मन में एक ही प्रश्न गूंजने लगा—अर्धांश का असली स्वरूप क्या है, और वह इस अग्नि-परीक्षा को कैसे पूर्ण करेगा।

अध्याय 16:

पंचतत्व की पुकार - समाज से समर्पण

रात गहरी थी, पर उस रात अंधकार में भी एक अजीब उजास था, जैसे गांव की थकी हुई आत्मा पहली बार खुद को सुनने के लिए जागी हो। नदी के किनारे बना वह मंडल दीपकों की लौ से चमक रहा था, और हर लौ स्थिर थी, जैसे हवा ने भी इस क्षण को बाधित न करने का संकल्प ले लिया हो।

त्रियम्बका उस मंडल के मध्य विराजमान थीं, उनकी आँखें बंद थीं, पर उनकी उपस्थिति ही इतनी प्रखर थी कि कोई भी नज़र उनसे हट नहीं पा रही थी। कुछ क्षणों की गहरी निस्तब्धता के बाद उनके होंठों से एक धीमा, पर अत्यंत स्पष्ट स्वर निकला, "प्रकृति कभी किसी से रूठती नहीं... वह केवल प्रतीक्षा करती है। वह देखती है कि कब मनुष्य अपने अहंकार से मुक्त होकर उसके पास लौटे।"

उनकी आवाज़ में न क्रोध था, न करुणा का प्रदर्शन, वह तो जैसे एक शाश्वत सत्य था, जो समय के पार से बहकर आ रहा था। उन्होंने धीरे से आँखें खोलीं और उपस्थित जनसमूह को देखा, "तुम सब इस संकट को दंड समझ रहे हो, पर यह दर्पण है... तुम्हारे अपने कर्मों का दर्पण।"

उनके शब्दों ने जैसे लोगों के भीतर छिपे भय को उजागर कर दिया। कुछ लोगों की आँखें झुक गईं, कुछ के चेहरे पर पश्चाताप की रेखाएँ उभर आईं। त्रियम्बका ने आगे कहा, "जब मनुष्य प्रकृति को केवल संसाधन समझने लगता है, तब संतुलन टूटता है। और जब संतुलन टूटता है, तो वही तत्त्व जो जीवन देते हैं, वही परीक्षा लेने लगते हैं।" उन्होंने अपने हाथ से मंडल की परिधि को छुआ, "यह पंचतत्त्व... जल, पृथ्वी, अग्नि, वायु और आकाश... ये केवल तत्व नहीं, तुम्हारे

अस्तित्व के आधार हैं। इन्हें जीतना नहीं, समझना होता है। इन्हें उपयोग नहीं, सम्मान देना होता है।"

भीड़ में एक बेचैनी फैल गई थी, पर अब उसमें डर से अधिक जिज्ञासा थी। एक वृद्ध महिला ने काँपती आवाज़ में पूछा, "माता... हमसे कहाँ भूल हो गई?" त्रियम्बका ने उनकी ओर देखा, उनकी दृष्टि कठोर नहीं, बल्कि गहरी थी, "भूल यह नहीं कि तुमने क्या किया... भूल यह है कि तुमने क्या महसूस करना बंद कर दिया। तुमने जल को केवल प्यास बुझाने का साधन समझा, उसकी पवित्रता भूल गए। तुमने धरती को केवल उपज देने वाली वस्तु माना, उसकी आत्मा को नहीं पहचाना। तुमने अग्नि को केवल चूल्हे तक सीमित कर दिया, उसके भीतर के तेज को नहीं जाना। और सबसे बड़ी भूल... तुमने एक-दूसरे को अलग मान लिया, जबकि तुम सब उसी एक चेतना के अंश हो।"

यह सुनकर सभा में बैठे लोग एक-दूसरे की ओर देखने लगे। कुछ के चेहरों पर शर्म थी, कुछ के भीतर एक नया बोध जन्म ले रहा था। तभी एक युवक ने साहस जुटाकर पूछा, "माता... अब हम क्या करें?" त्रियम्बका ने गहरी साँस ली, जैसे समय के किसी बहुत पुराने अध्याय को खोल रही हों, "प्रायश्चित शब्दों से नहीं होता... वह कर्म से होता है। तुम्हें पंचतत्त्वों से क्षमा माँगनी होगी, और यह क्षमा तभी मिलेगी जब तुम उन्हें फिर से अपने भीतर स्थान दोगे।"

उन्होंने आगे कहा, "आने वाली (शरद) पूर्णिमा की रात... जब चंद्रमा अपनी सोलह कलाओं के साथ पूर्ण होगा... उस रात तुम सब मिलकर 'तत्त्व होम' करोगे। लेकिन यह कोई साधारण यज्ञ नहीं होगा।" लोग ध्यान से सुनने लगे। "इसमें अग्नि नहीं जलेगी, कोई मंत्रोच्चार नहीं होगा, कोई आहुति नहीं दी जाएगी। इसमें एक आत्मा स्वयं को समर्पित करेगी... अपनी चेतना को पंचतत्त्वों

में विलीन करेगी। फिर उन्होंने विस्तार से बताया, हर तत्त्व को वही लाएगा, जो उसके गुण को जीता हो।"

उनके शब्दों ने वातावरण को और गहरा कर दिया।

अगले ही दिन, जब कार्य आरंभ हुआ, तो यह केवल एक अनुष्ठान की तैयारी नहीं थी—यह हर व्यक्ति के भीतर चल रही एक यात्रा थी। बच्चे और युवा उस पुराने खंडहर की ओर बढ़े, जहाँ एक प्राचीन शिव मंदिर मिट्टी में दब चुका था। उनके कदमों में उत्साह था, पर साथ ही एक अनजाना संकोच भी। वे जानते थे कि वे केवल पानी निकालने नहीं जा रहे—वे उस जीवन को जगाने जा रहे हैं, जिसे उन्होंने अनदेखा कर दिया था। खुदाई करते समय उनके हाथ मिट्टी से भरते गए, शरीर थकता गया, लेकिन उनके भीतर एक अजीब जिद थी—जैसे वे खुद को साबित करना चाहते हों। जब अंततः धरती से वह ठंडी, स्वच्छ जलधारा फूटी, तो वह केवल जल नहीं था—वह उनकी मेहनत, उनकी मासूमियत और उनके भीतर के बदलाव का प्रतीक था। एक छोटे बच्चे का प्रश्न—"क्या यह पानी हमें माफ़ कर देगा?"—दरअसल पूरे गांव की आत्मा का प्रश्न था। और जब अर्धांश ने कहा कि सम्मान देने पर जल जीवन देगा, तो वह केवल उत्तर नहीं था—वह एक वचन था। उस जल को जब पात्र में भरकर मंडल में रखा गया, तो उसमें केवल पानी नहीं, भविष्य के प्रति एक नई जिम्मेदारी भी रखी गई।

उधर, पृथ्वी तत्त्व लाने के लिए बुज़ुर्ग और किसान मंदिर के गर्भगृह में पहुँचे। यह वही स्थान था, जहाँ कभी उनके पूर्वजों ने प्रार्थनाएँ की थीं, लेकिन अब वह उपेक्षा और विस्मृति का प्रतीक बन चुका था। जब उन्होंने उस मिट्टी को छुआ, तो उनके हाथ केवल धरती को नहीं, अपनी ही जड़ों को छू रहे थे। एक वृद्ध किसान का रो पड़ना केवल व्यक्तिगत दुख नहीं था—वह उस पीढ़ी की स्वीकारोक्ति थी, जिसने प्रकृति से लिया बहुत, पर लौटाया कम। जब वे उस स्थान

को साफ कर रहे थे, तो हर उठाया गया पत्थर, हर हटाई गई धूल उनके भीतर के बोझ को हल्का कर रही थी। अंततः जब उस मिट्टी को सफेद वस्त्र में लपेटा गया, तो वह केवल पृथ्वी तत्त्व नहीं था—वह स्मृति, पश्चाताप और पुनः जुड़ने की एक मौन प्रतिज्ञा थी।

अग्नि तत्त्व की यात्रा महिलाओं के माध्यम से हुई, और यह सबसे सूक्ष्म, फिर भी सबसे गहरी थी। वे अपने-अपने घरों से चूल्हों की भस्म लेकर आईं, लेकिन उस भस्म में केवल जली हुई लकड़ी की राख नहीं थी—वह उनके जीवन का संचित अनुभव था। हर रोटी, जो उन्होंने परिवार के लिए बनाई थी; हर रात, जो उन्होंने त्याग में बिताई थी; हर वह क्षण, जब उन्होंने अपने दर्द को दबाकर किसी और को सहारा दिया था—सब उस राख में जैसे जीवित था। जब एक वृद्धा ने कहा कि इसमें उसकी पूरी ज़िंदगी है, तो वह अतिशयोक्ति नहीं थी—वह सत्य था। त्रियम्बका ने जब उस भस्म को माथे से लगाया और कहा कि अग्नि कभी समाप्त नहीं होती, केवल रूप बदलती है, तो उस क्षण अग्नि तत्त्व केवल एक प्रतीक नहीं रहा—वह जीवन की निरंतरता और शुद्धि का साक्षात रूप बन गया।

वायु तत्त्व का अनुभव सबसे अलग था। गांव के उस पुराने पीपल वृक्ष के बारे में वर्षों से यह मान्यता थी कि वहाँ अशांत आत्माओं का वास है। कहा जाता था कि रात के समय वहाँ से अनसुनी फुसफुसाहटें आती हैं, बिना हवा के भी उसकी शाखाएँ हिलती हैं, और जो भी उसके पास जाने की कोशिश करता, वह एक अजीब-सी घबराहट से भर उठता। धीरे-धीरे लोगों ने उस स्थान से दूरी बना ली थी—डर केवल कहानी नहीं रहा था, वह एक आदत बन चुका था।

ऐसे ही स्थान के नीचे जब किन्नर समाज पहुँचा, तो वे केवल तत्त्व लेने नहीं गए थे—वे उस भय का सामना करने गए थे, जिसे पूरे गांव ने वर्षों से अपने भीतर दबा रखा था। उनके भीतर न कोई डर था, न विरोध—सिर्फ एक गहरी स्वीकृति

थी। जब उन्होंने अपनी तालियों की लय से उस स्थान को स्पंदित किया, तो वह केवल एक क्रिया नहीं थी—वह एक संवाद था, जो दिखाई नहीं देता, पर महसूस होता है। हवा में उठती वह हल्की कंपन जैसे उस अदृश्य संसार के साथ एक सेतु बन गई। कुछ क्षणों के लिए ऐसा लगा मानो वृक्ष स्वयं उस लय को सुन रहा हो। जब एक किन्नर की आँखों से आँसू बहते हुए यह शब्द निकले—"यह डर नहीं था… यह प्रतीक्षा थी…"—तो जैसे वर्षों से जमी हुई भ्रांति टूटने लगी। उस क्षण स्पष्ट हुआ कि प्रकृति और आत्माएँ शत्रु नहीं होतीं, वे केवल समझे जाने की प्रतीक्षा करती हैं। उस स्थान से लाई गई पत्तियाँ और मिट्टी अब केवल वायु तत्त्व नहीं थीं—वे स्वीकृति, संतुलन और अदृश्य के प्रति सम्मान का जीवंत प्रतीक बन चुकी थीं।

आकाश तत्त्व सबसे सूक्ष्म था, और इसलिए उसे बच्चों को सौंपा गया। उन्होंने गांव के उस जर्जर दीपस्तंभ को चुना, जो वर्षों से उपेक्षित खड़ा था। उसे साफ करना, सीधा करना और उसमें नया घंटा बाँधना केवल एक भौतिक कार्य नहीं था—वह विश्वास को फिर से खड़ा करना था। जब उस छोटे से हाथ ने घंटी को छुआ और "ङ्ग…" की ध्वनि गूंजी, तो वह केवल आवाज़ नहीं थी—वह एक कंपन था, जो हर व्यक्ति के भीतर उतर गया। वह ध्वनि जैसे आकाश में नहीं, आत्मा में फैल गई। त्रियम्बका के शब्द—कि आकाश को छूने के लिए ऊँचाई नहीं, निर्मलता चाहिए—उस क्षण पूर्णतः सत्य प्रतीत हुए। आकाश तत्त्व वहाँ किसी वस्तु के रूप में नहीं, बल्कि उस अनुभूति के रूप में उपस्थित था, जो सबको जोड़ रही थी।

इस प्रकार, हर तत्त्व केवल लाया नहीं गया—उसे जिया गया, महसूस किया गया, और उसके साथ जुड़ी भावनाओं ने उसे पूर्ण बनाया। अब मंडल में रखे वे तत्त्व मात्र प्रतीक नहीं थे—वे पूरे गांव की चेतना, उसकी गलतियाँ, उसका प्रेम, उसका साहस और उसकी आशा अपने भीतर समेटे हुए थे। और अब, जब पूर्णिमा की रात निकट आ रही थी, तो यह स्पष्ट था कि 'तत्त्व होम' केवल एक अनुष्ठान नहीं होगा—यह एक आत्मा और पूरे गांव के भीतर होने वाला परिवर्तन होगा।

अध्याय 17:

तत्त्व होम - आत्मा की अग्नि में समर्पण

आज पूर्णिमा की सुबह अर्धांश की प्रक्रिया स्नान और शुद्धिकरण से शुरू हुई। सबसे पहले गंगाजल से स्नान कर उसके मन और शरीर को शुद्ध किया गया। फिर उसके माथे, कंधों और छाती पर चंदन, कुंकुम और गंध लगाया गया—मानो उसके भीतर देवी तत्त्व को जागृत किया जा रहा हो। इसके बाद माता पद्मावती ने अर्धनारीश्वर मंदिर में विधिपूर्वक पूजा की और भगवान के चरणों में अर्पित श्रृंगार से अर्धांश को सजाना आरंभ किया।

यह श्रृंगार केवल बाहरी सजावट नहीं था, बल्कि एक गहरा आध्यात्मिक अनुष्ठान था—एक ऐसी साधना, जिसमें आत्मा को दैवी स्वरूप में ढाला जाता है। उसे बैंगनी रंग की सूती साड़ी में लपेटा गया—लाल की शक्ति और नीले के शिवत्व का संगम। मांगटीका, झुमके, नथ, कंगन, चूड़ियाँ, बिछुए, पायल और फूलों का गजरा पहनाकर जब उसकी आँखों में सुरमा लगाया गया और माथे पर बिंदी सजी, तो वह अब केवल अर्धांश नहीं रहा—वह एक साधक, एक सेतु, एक माध्यम बन चुका था। यज्ञ में जाने से पहले माता पद्मावती ने उसे अर्धनारीश्वर का ध्यान करने को कहा—यह उस स्पर्श को शक्ति में बदल देने की अंतिम तैयारी थी।

त्रियम्बका के निर्देश पर गांव के मध्य में एक चक्र बनाया गया था—पाँच कोणों वाला एक दिव्य मंडल, जिसके हर कोण पर एक तत्त्व की वेदी स्थापित थी। पृथ्वी की वेदी बुज़ुर्गों और किसानों द्वारा लायी गई पवित्र मिट्टी से बनी थी। जल की वेदी पुराने कुएँ से लाए गए शांत, गहरे जल से भरे कलश के रूप में थी। अग्नि

की वेदी महिलाओं द्वारा एकत्रित चूल्हों की भस्म से निर्मित थी। वायु की वेदी पीपल वृक्ष के नीचे से लाए गए पत्तों से सजी थी, जिन्हें किन्नर समाज ने श्रद्धा से सजाया था। और आकाश की वेदी एक दीपस्तंभ था, जिसकी चोटी पर बंधा हुआ घंटा प्रार्थना की ध्वनि का प्रतीक बन खड़ा था।

हर वेदी के सामने वही लोग उपस्थित थे, जो उस तत्त्व का प्रतिनिधित्व करते थे। वहाँ कोई स्वर्ण सिंहासन नहीं था, कोई आडंबर नहीं—बस धूप की गंध, दीपों की ज्योति और मौन का संगीत। यह कोई पारंपरिक अग्निहोत्र नहीं था, न वैदिक मंत्रों की गूंज, न आहुतियों की धधकती ज्वाला—यह आत्मा का होम था, जहाँ भौतिक नहीं, आंतरिक समर्पण अपेक्षित था।

त्रियम्बका की आवाज़ पूरे मंडल में गूंजी—
"यह तत्त्व होम न देखा जा सकता है, न सुना—यह केवल अनुभव किया जाता है। इसमें अग्नि बाहर नहीं, भीतर जलेगी… और आहुति में वस्तुएँ नहीं, अहंकार, पीड़ा और छवि समर्पित होंगी।"

पूर्णिमा का चंद्रमा अब मंडल के ठीक ऊपर था, और उसकी चांदनी सब पर एक अलौकिक आभा बिखेर रही थी। त्रियम्बका के संकेत पर माता पद्मावती अर्धांश को लेकर आईं। वह मंदिर में ध्यान में बैठा था, स्थिर, मौन, जैसे पहले ही किसी और लोक में प्रवेश कर चुका हो। उसे वेदियों के बीचोंबीच बैठाया गया। त्रियम्बका ने उसके सामने एक दीपक प्रज्वलित किया, और माता पद्मावती द्वारा लाई गई श्रृंगार की थाल उसके समीप रख दी। फिर त्रियम्बका उसके पीछे खड़ी हो गईं, हाथों में एक सफेद चादर लिए—जैसे किसी अनदेखे क्षण की प्रतीक्षा कर रही हों।

अचानक दीपक की लौ ऊँची उठी, दीपस्तंभ पर बंधी घंटी स्वयं ही बज उठी, कुएँ के जल की हलचल और दूर बहती नदी की ध्वनि सुनाई देने लगी, और पीपल के पत्ते बिना हवा के हिलने लगे।

"तत्त्वों ने उत्तर दे दिया है… होम प्रारंभ करो।"
त्रियम्बका का स्वर गंभीर था।

चारों ओर मौन छा गया।

अर्धांश ने अपनी आँखें बंद कर लीं।

उसकी श्वास धीमी हो गई।

और तभी,

1. जल की पुकार उठी।

"मैं जल हूँ—बहता हूँ, सब कुछ समेटता हूँ… आँसू, पसीना, रक्त… सब में मैं हूँ। क्या तुम बहना जानते हो, अर्धांश? या तुम अपने भीतर ही बाढ़ बन चुके हो?"

उसके भीतर वर्षों से रुके आँसू एक साथ उमड़ पड़े। बचपन के वे क्षण, जब उसे रोने नहीं दिया गया… जब हर भावना को दबा दिया गया… अब सब बहने लगा। आँखों से आँसू, देह से पसीना—हर रूप में जल प्रवाहित हो उठा।

"मैं बहना चाहता हूँ… जो मैंने रोका, अब उसे बहने दो…"

जल ने कहा, "तो मुझे दे दो अपनी छवि—वह रूप, जिसे तुम बनना चाहते थे, पर बन नहीं सके।"

अर्धांश ने श्रृंगार की थाल से एक छोटा आइना उठाया। उसमें उसने अपना चेहरा देखा—वह चेहरा, जिसमें वह रोज़ खुद को खोजता था। उसने उसे चूमा… और जल में डुबो दिया।

2. पृथ्वी की पुकार आई।

“मैं भू हूँ, धारण करने वाली। मुझे रौंदा गया, खोदा गया… फिर भी मैं सबको पालती रही। क्या तुम भी सहन कर सकोगी?”

अर्धांश की देह भारी हो गई। उसे अपने बचपन की हर चोट, हर अपमान याद आने लगा। वह सब जैसे मिट्टी बनकर उसके भीतर भर गया।

“मैं टूटना नहीं चाहती… मैं बनना चाहती हूँ…”

पृथ्वी ने कहा, “तो सबसे पहले त्यागो—अपना नाम।”

वह ठिठक गया। उसका नाम… उसकी पहचान…

उसने मिट्टी उठाई, उसमें अपना नाम लिखा… और उसे वापस मिट्टी में मिला दिया। अब वह नामहीन था।

3. अग्नि की पुकार गूंजी।

“मैं अग्नि हूँ—रचती भी हूँ, भस्म भी करती हूँ। क्या तुम जलने को तैयार हो?”

उसके भीतर की सारी स्मृतियाँ जलने लगीं—हर अपमान, हर अस्वीकृति।

“मैं जलने को तैयार हूँ…”

“तो खुद को पहचान— तू जलेगी या तू जलेगा ?

कौन है तू ?”

अर्धांश ने अपनी साड़ी उतारी… और उसे दीपक की लौ में जला दिया।

भीड़ में हलचल हुई, पर त्रियम्बका के एक संकेत से सब शांत हो गए।

4. वायु की पुकार आई,

“मैं वायु हूँ—गति ही जीवन है। तुम रुके हुए हो… क्या तुम उड़ सकते हो?”

“मैं बस एक आत्मा हूँ… जो मुक्त होना चाहती है…”

“तो मुझे दे दो अपनी भूमिका—वह किरदार, जो तुम हर दिन निभाते हो। खोल दो सारे बंधन और उड़ने दो ख़ुदको मेरे साथ”

अर्धांश ने अपने आभूषण उतार दिए, जूड़ा खोल दिया… और सब कुछ वायु की वेदी में रख दिया।

अब अर्धांश का काजल फ़ैल चुका था श्रृंगार और साड़ी उतर चुके थे और तेज़ हवा उसके घने लम्बे बालों को आज़ादी से उड़ा रही थी।

5. अंत में आकाश की पुकार हुई,

“मैं आकाश हूँ—सबका आश्रय, पर स्वयं शून्य। क्या तुम शून्य हो सकते हो?”

अब उसके पास कुछ नहीं बचा था—न छवि, न नाम, न भूमिका।

“हाँ… अब मैं नहीं रहा…”

“क्या सच में?”

एक अंतिम सत्य सामने खड़ा था।

अर्धांश ने अपना अंतिम वस्त्र भी त्याग दिया—वह प्रतीक, जो उसकी सबसे गहरी पहचान को ढक रहा था।

भीड़ में हलचल हुई। मीरा अपना दुपट्टा लिए आगे बढ़ी, लेकिन माता पद्मावती ने उसे रोक लिया—

“यह होम उसे अपने असली स्वरूप में करना होगा… यही उसका असली स्वरूप है।” सामाजिक शिष्टाचार बनाये रखने के लिए माता त्रियम्बका ने किसी को कुछ समझ आता इससे पहले ही अर्धांश को उस सफ़ेद चादर में लपेट दिया।

उस रात… तत्त्वों ने कुछ लिया नहीं था, उन्होंने बस वह सब हटा दिया था, जो सत्य नहीं था और जो बचा…वह **सत्य था।**

वहाँ अर्धांश नहीं था—वह नाम जैसे पीछे छूट गया था, और केवल एक उपस्थिति शेष थी, जो जन्मों के बंधनों से मुक्त होकर मौन में स्थिर हो चुकी थी। त्यागने को अब कुछ बचा ही नहीं था। उसने हाथ जोड़कर भीतर ही मंत्र फुसफुसाया

“ॐ नमः शून्याय”

और दीपस्तंभ की स्थिर लौ को एक क्षण निहारा, फिर बिना पीछे देखे आगे बढ़ गया। उसी पल मंदिर में लगा घंटा अपने आप बज उठा।

माँ त्रियम्बका ने घोषणा की—तत्त्व होम पूर्ण हुआ।

वहाँ अब केवल एक लौ थी, जिसमें अर्धांश का अहम्, नाम और अस्तित्व विलीन होकर चेतना बन चुका था। गाँव के लोग पास आए, पर अब उनकी आँखों में जिज्ञासा नहीं, एक मौन श्रद्धा थी। त्रियम्बका ने कहा - अर्धांश अब चेतना है, और वही इस गाँव की वार्षिक तत्त्व होम अग्नि होगा।

अध्याय 18:

छठा तत्त्व: मौन की प्रतिध्वनि

अगले दिन सुबह की किरणें कोमल थीं, जैसे प्रकृति स्वयं उस रूपांतरण को स्वीकार कर रही हो। गाँव बदलने लगा। वर्षा होने लगी, सूखी धरती हरी होने लगी, पुराने कुएँ का जल स्वच्छ और मीठा हो गया। जैसे प्रकृति भी उस परिवर्तन की साक्षी बन गई हो।

तत्त्व होम के बाद माता त्रियम्बका कहीं दिखाई नहीं दीं, पर उनकी उपस्थिति हर बदलाव में महसूस होती रही।

उसी रात, शांत वेदियों के बीच, उसके भीतर एक सूक्ष्म कंपन जागा—न ध्वनि, न स्पर्श, केवल एक गहरी अनुभूति। शून्य में जैसे कोई अनाम गर्भ खुला, और एक गूँज उठी-

"तत्त्वों से परे भी एक तत्त्व है… **छठा तत्त्व "नाद"**। शब्द से पहले की ध्वनि, इच्छा से पहले की आकांक्षा, जो सबको जोड़ती है, पर स्वयं कहीं नहीं ठहरती।" उसे भ्रूमध्य (माथे के बीच) में हल्की सी गरमाहट महसूस हुई, हथेलियाँ स्वयं जुड़ गईं, और हृदय से मंत्र फूटा

"**ॐ नादाय नमः… ना रूपं, ना वर्णं…**"

जब उसकी आँखें खुलीं, होम मंडल हल्की स्वर्णिमा से दीप्त था। उसके भीतर अब नाद था—एक ऐसा कंपन जो सुनाई नहीं देता, पर हर जीव के भीतर गूँजता है। उसके होंठ स्थिर थे, पर भीतर से एक ध्वनि उठ रही थी—"**नन्… नन्… नन्… नादं…**"।

यह गूँज कानों तक नहीं पहुँची, बल्कि लोगों के भीतर उतर गई—कुछ अनायास रो पड़े। अब अर्धांश मौन नहीं था—वह स्वयं एक मौन गूँज बन चुका था, जो हर हृदय में सुनाई दे रही थी।

समापन –

“तृतीय प्रकृति : रूप से मोक्ष तक”

अर्धांश के मन में उस रात की छवि अब भी उतनी ही स्पष्ट थी— “सर्वरूपा” की मूर्ति, जो किसी एक रूप में सीमित नहीं थी। न पुरुष, न स्त्री, न किन्नर—वह सब कुछ थी, और फिर भी किसी में बंधी नहीं थी। वह दृश्य अब स्वप्न नहीं रहा था, उसकी चेतना का हिस्सा बन चुका था।

संध्या होते ही, जब गाँव की आवाज़ें धीमी पड़ने लगतीं, अर्धांश नदी किनारे बैठ जाता। ध्यान अब उसके लिए कोई क्रिया नहीं था—वह उसकी अवस्था बन चुका था।

उसके भीतर एक नया स्पंदन उठ रहा था—**सप्तम तत्त्व** का, जो बाहर नहीं, भीतर की सबसे गहरी धारा में बहता है। उसे महसूस होने लगा कि जो वह वर्षों से खुद से छुपाता रहा, वही अब सबसे स्पष्ट होकर सामने आ रहा है।

उसकी साँसों के साथ उसकी चेतना फैलने लगी—धूप की हल्की खुशबू, मिट्टी की ठंडी नमी, नदी की दूर से आती गूँज—सब कुछ एक ही लय में बंधने लगा। यह केवल अनुभव नहीं था, एक ऐसा संगीत था जो शब्दों से परे था। हर ध्वनि उसके लिए अब एक जीवित मंत्र थी, हर श्वास एक नाद, जो उसे पूरे ब्रह्मांड से जोड़ रहा था।

धीरे-धीरे, शास्त्रों की सीमाएँ उसे छोटी लगने लगीं। धर्म अब उसके लिए नियमों और विधियों का विषय नहीं रहा, वह भीतर के ब्रह्म को पहचानने की एक यात्रा बन गया।

उसकी साधना किसी शिखर पर नहीं पहुँची थी, वह स्वयं शिखर में बदल गई थी।

उसके भीतर उठती शांति का प्रभाव अब केवल उसी तक सीमित नहीं रहा। अर्धांश अब नदी किनारे साधना में लीन रहता—न भूख का भान, न समय का। वह अब व्यक्ति नहीं, एक साधना बन चुका था। पर उसका कार्य वहीं नहीं रुका। उसकी टीम और किन्नर समाज ने गाँव को बदलने का संकल्प अपने हाथों में लिया।

कमल, माधवी, रवि, सावित्री और कई अन्य लोगों ने मिलकर '**सप्ततत्त्व सुधार समिति**' बनाई। यह केवल एक संगठन नहीं था, यह एक सोच थी, जो सामाजिक, धार्मिक और आध्यात्मिक बदलाव को एक साथ लेकर चल रही थी।

शिक्षा, स्वास्थ्य, और समानता के लिए नए प्रयास शुरू हुए। महिलाओं ने स्व-सहायता समूह बनाए, बच्चों की शिक्षा पर ध्यान दिया गया, और धीरे-धीरे जाति और वर्ग के भेद कम होने लगे।

किन्नर समाज, जो कभी उपेक्षा का बोझ ढोता आया था, अब परिवर्तन का प्रतीक बन रहा था। अर्धांश की कक्षा से निकला एक किन्नर जब आईएएस बनकर लौटा, तो वह केवल एक व्यक्ति की सफलता नहीं थी, वह पूरे समाज के आत्मसम्मान का पुनर्जन्म था।

खंडहर पड़े शिव मंदिर का पुनर्निर्माण हुआ। उसी मंदिर में भगवान अर्धनारीश्वर की स्थापना की गई, एक ऐसा रूप, जो समन्वय और संतुलन का प्रतीक था। माता पद्मावती ने उस आराधना को आगे बढ़ाया, और मंदिर धीरे-धीरे पूरे गाँव के लिए एक ऐसी जगह बन गया, जहाँ केवल पूजा नहीं, स्वीकार्यता और प्रेम भी जीवित थे।

गाँव अब केवल एक स्थान नहीं रहा, वह एक विचार बन गया था। एक ऐसा समाज, जहाँ भेदभाव की जगह समझ ने ली थी, और भय की जगह अपनेपन ने।

और इस सबके बीच, अर्धांश मौन था, पर उसका मौन ही सबसे गहरा संदेश बन चुका था।

कहानी यहाँ थमती है—
पर उसकी गूँज अभी बाकी है।

जय माँ _/_